मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 123 ● वर्ष 13, अंक 11 ● जनवरी 2024 ● दस रुपये

विशेष अंक
24 पृष्ठ

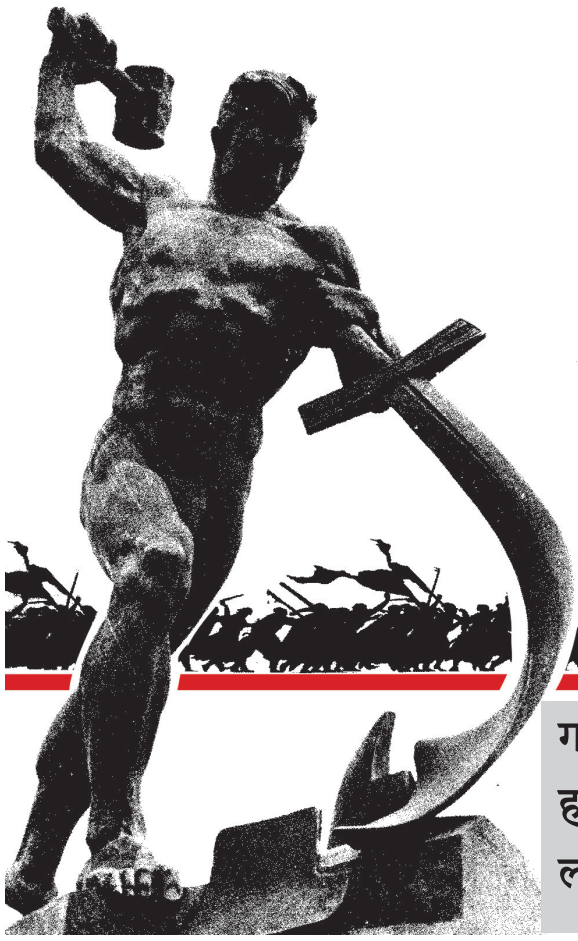

मज़दूर बिगुल

गाज़ा के मुक्तियोद्धाओं के हाथों इज़रायली हत्यारों की लगातार हार जारी है! 9

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा : एक रिपोर्ट 12-13

कश्मीर के हालात और मोदी सरकार के दावों की सच्चाई 17

महँगाई, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार पर काबू पाने में नाकाम मोदी सरकार राम मन्दिर के ज़रिये साम्प्रदायिक लहर पर सवार हो फिर सत्ता पाने की फ़िराक़ में

मज़दूरों-मेहनतकशों को इस साम्प्रदायिक साज़िश को सिरे से नकारना होगा वरना आने वाले साल उनके लिए विनाशकारी होंगे!

सम्पादकीय अग्रलेख

भाजपा सरकार, भाजपा पार्टी और समूचे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की मशीनरी 22 जनवरी को राम मन्दिर के उद्घाटन के नाम पर पूरे देश में साम्प्रदायिक माहौल बनाने में लग गयी है। हज़ारों करोड़ रुपये ख़र्च करके देश में इसका प्रचार किया जा रहा है। हर शहर, हर गाँव में मन्दिर उद्घाटन के बड़े-बड़े पोस्टर और बैनर लटका दिये गये हैं। एक पोस्टर में तो राम को एक बालक के तौर पर दिखाया गया है, जो नरेन्द्र मोदी का हाथ पकड़कर मन्दिर की ओर जा रहा है! मतलब, खुलेआम नरेन्द्र मोदी को भाजपा सरकार व संघ परिवार एक अवतार के तौर पर पेश कर रही है। मक़सद है जनता की धार्मिक भावनाओं का दुरुपयोग व शोषण करके नये सिरे से धार्मिक उन्माद की एक लहर पैदा की जाय और इस लहर पर सवार होकर सत्ता में पहुँचा जाये।

उत्तर प्रदेश सरकार ने प्रदेश में जगह-जगह हज़ारों एलईडी स्क्रीन लगाकर मन्दिर उद्घाटन का सीधा प्रसारण करने का एलान किया है। संघ परिवार ने एलान किया है कि उसके 5 लाख कार्यकर्ता उत्तर प्रदेश में हरेक घर में मन्दिर उद्घाटन का न्यौता लेकर जायेंगे। उत्तर प्रदेश में हर मन्दिर पर 22 जनवरी को मन्दिर उद्घाटन का जश्न मने, इसकी तैयारी ख़ुद उत्तर प्रदेश सरकार कर रही है। बिहार में हर मन्दिर के बाहर एलईडी स्क्रीन द्वारा मन्दिर उद्घाटन का सीधा प्रसारण करने का इन्तज़ाम बिहार के शामियाने वालों के एसोसियेशन के साथ मिलकर भाजपा कर रही है। हरियाणा सरकार ने घोषणा की है कि वह मन्दिर उद्घाटन के बाद हरियाणा से अयोध्या तक की हज़ारों वोल्वो बसें चलायेगी। इसी प्रकार यह ख़बर भी आ रही है कि मन्दिर उद्घाटन के दिन विशेष ट्रेनें व बसें चलाने का रेल विभाग व तमाम परिवहन विभाग इन्तज़ाम कर रहे हैं। तमाम शहरों में अपार्टमेण्टों में रहने वाले खाए-पिये-अघाये-मुटियाये उच्च मध्यवर्ग के बीच रेज़िडेण्ट वेलफ़ेयर एसोसियेशन के ज़रिये भाजपा के लोग 'पूजित अक्षत' लेकर जा रहे हैं और राम मन्दिर के उद्घाटन को लेकर धार्मिक उन्माद का माहौल तैयार कर रहे हैं। कुछ ज़िलों में तो प्रशासन ने स्कूलों में धार्मिक कार्यक्रम करने या दुकानदारों को राम मन्दिर का मॉडल रखने का सरकारी आदेश तक जारी कर दिया है।

हर कोई जानता है कि यह कोई धार्मिक नहीं, बल्कि एक राजनीतिक कार्यक्रम है। महँगाई को क़ाबू करने, बेरोज़गारी पर लगाम कसने, भ्रष्टाचार पर रोक लगाने, मज़दूरों-मेहनतकशों को रोज़गार-

(पेज 6 पर जारी)

नयी आपराधिक प्रक्रिया संहिताएँ, जनता के दमन के नये औज़ार

● अनन्त

विगत वर्ष संसद के मानसून सत्र के आखिरी दिन, 11 अगस्त को, केंद्र सरकार ने पहली बार संसद पटल पर अपराध क़ानून सम्बन्धी तीन विधेयक पेश किये। ये विधेयक थे, भारतीय न्याय संहिता विधेयक, 2023; भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता 2023, एवं भारतीय साक्ष्य विधेयक, 2023। ये क्रमशः भारतीय दण्ड संहिता (आइपीसी) 1860; अपराध प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी), 1967, तथा साक्ष्य अधिनियम, 1872 को प्रतिस्थापित करेंगे। अपनी पहली प्रस्तुति के क़रीब चार महीनों बाद कुछ "औपचारिकताओं", "विशेषज्ञों" के "सलाह-विमर्श" के बाद, मूल मसौदे में ही मामूली फेरबदल कर के, इन्हें दिसम्बर में दुबारा संसद में पेश किया गया। विपक्ष के सांसदों के निलम्बन के बीच संसद के दोनों सदनों में इन विधेयकों को पारित कर दिया गया। दरअसल, इन संहिताओं की असल रूपरेखा कोविड महामारी के दिनों ही तय की जा रही थी, जिन्हें बस अमली जामा पहनाना था।

मोदी सरकार और उसकी भोंपू मीडिया इस मामले को ऐसे पेश कर रही है कि यह पूरी कवायद अंग्रेजों के समय के दण्ड के विधान के बदले "रामराज्य का न्याय" को लागू करने के लिए है। लेकिन कहने की आवश्यकता नहीं कि फ़ासीवादी मोदी सरकार के राज में, जहाँ हर तरह के जनवादी दायरों को संकुचित किया जा रहा है, तमाम जन पक्षधर आवाजों को कुचला जा रहा है, कश्मीर से लेकर मणिपुर तक आम जनता के जीवन को नर्क बना दिया गया है, यहाँ तक की बुर्जुआ विपक्षी नेताओं, दलों तक पर मोदी सरकार वैमनस्य के साथ कार्यवाही कर रही है, वहाँ न्याय के साथ उसका कोई वास्ता हो ही नहीं सकता। इन विधेयकों के साथ उसकी असल मंशा अंग्रेजों से एक कदम और आगे बढ़कर दमनात्मक दंडात्मक कानून लागू करना है। इन नये संहिताओं पर एक बार नज़र डालने के साथ यह बात स्पष्ट हो जाती।

जनता के बीच हर तरीके से नंगी हो चुकी फ़ासीवादी मोदी सरकार को आगामी आम चुनाव में एक बार फिर से जीतकर आने के लिए तमाम तरीके के हथकण्डों, तिकड़मों के साथ डण्डे के ज़ोर का सहारा है। वह हर तरह के छोटे से बड़े विरोधों को कुचलने के लिए आमादा है। अपनी सत्ता को लेकर असुरक्षा, आशंका में घिरा शासक बल प्रयोग की किसी भी हद तक जा सकता है।

कौन सा कृत्य अपराध की श्रेणी में आता है, और उसके लिए क्या सज़ा हो सकती है, यह परिभाषित करने का काम दण्ड संहिता के तहत होता है। विभिन्न धाराओं के तहत अलग-अलग

(पेज 11 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

कविता

हमारा श्रम

मज़दूरों के मेहनत करने की ताकत
या यूँ कहें कि मानवीय श्रम
दुनिया के हर काम कर सकता है
मानवता को नयी उड़ानों पर ले जा सकता है
वो पहाड़ों को चीरकर
नदिया, नहरें, रेल की पटरियाँ बिछा सकता है
वो धरती को चीरकर
कोयला, लोहा, धातुएँ और
पेट्रोलियम निकाल सकता है
वो अपने श्रम से रेल, मेट्रो, पानी का जहाज़
हवाई जहाज़ व रॉकेट बना सकता है।
अगर हमें मौक़ा मिले तो
इस धरती को स्वर्ग बना सकते हैं
मगर बेड़ियों से जकड़ रखा है हमारे
जिस्म व आत्मा को इस लूट की व्यवस्था ने
हम चाहते हैं अपने समाज को
बेहतर बनाना मगर
इस मुनाफ़े की व्यवस्था ने
हमारे पैरों को रोक रखा है
हम चाहते है एक नया समाज बनाना।
मगर इस पूँजी की व्यवस्था ने
हमे रोक रखा है
बिखरा दिया है हम सबको बाँट दिया है
एक-दूसरे से हमारे प्यार, हमारी भावनाओं को
कर दिया है बाज़ार के हवाले
ताकि हम सबकुछ भूलकर
अपने में ही खोये रहें मगर
हम मज़दूर व नौजवान ही हैं
दुनिया की वो ताकत
जो बदल सकते हैं
इस दुनिया को बना सकते हैं
अपनी इस धरती को स्वर्ग जैसा
हमें भरोसा करना होगा अपने संगठित होने पर
हमें बनाना होगा एक नये समाज को
हाँ हमें ही बनाना होगा एक नये समाज को।

– आनन्द, गुड़गाँव

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।

1. 'मज़दूर बिगुल' की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।

2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।

3. अख़बार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)

4. अख़बार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिए जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे 'बिगुल' 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

‘एस्मा’ को तत्काल वापस लो!
आँगनवाड़ीकर्मियों की माँगों को पूरा करो!!

आन्ध्र प्रदेश की आँगनवाड़ी कर्मियों के संघर्ष पर एस्मा थोपने के ख़िलाफ़ दिल्ली के आन्ध्र प्रदेश भवन पर 15 जनवरी को संयुक्त विरोध प्रदर्शन का आयोजन किया गया। इस विरोध प्रदर्शन में दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन (DSAWHU) के अलावा अन्य यूनियनें और संगठन शामिल थे।

आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों का अपनी जायज़ माँगों के लिए संघर्ष आज देश के कई राज्यों में जारी है। आन्ध्र प्रदेश में भी आँगनवाड़ी कामगार बीते 27 दिनों से अनिश्चितकालीन हड़ताल पर थीं। उनकी माँगों में से प्रमुख माँग न्यूनतम मज़दूरी की है। इसके अलावा ग्रेच्युटी, पेंशन व पक्के कर्मचारी के दर्जे की माँग को लेकर भी वे संघर्षरत हैं। मालूम हो कि आन्ध्र सरकार ने महिलाकर्मियों की जायज़ माँगों को पूरा करने की बजाय उनकी हड़ताल को ख़त्म करने के लिए ‘एस्मा’ (एसेंशियल सर्विसेज मेंटेनेन्स एक्ट) जैसे दमनात्मक क़ानून का इस्तेमाल किया और उनकी हड़ताल पर छह महीने का प्रतिबन्ध लगा दिया।

यह पहली बार नहीं हुआ है जब आँगनवाड़ीकर्मियों की हड़ताल पर ‘एस्मा’ जैसा काला क़ानून थोपा गया हो! इससे पहले भी दिल्ली की 22,000 आँगनवाड़ी स्त्री कामगारों की 38 दिनों तक चली शानदार हड़ताल को तमाम तरह से तोड़ने में विफल रही राज्य और केन्द्र सरकार ने मिलकर हड़ताल पर ‘एस्मा’ के जरिये प्रतिबन्ध लगाया।

एस्मा/हेस्मा का क़ानून अपने आप में ही बेहद अलोकतांत्रिक और मज़दूर-विरोधी है और आँगनवाड़ीकर्मियों पर इसका इस्तेमाल तो ग़ैर-क़ानूनी भी है।

क़ानूनन तो यह केवल सरकारी कर्मचारियों पर ही लगाया जा सकता है और आँगनवाड़ीकर्मियों को तो सरकार कर्मचारी मानती नहीं है फिर उनपर इसका इस्तेमाल क्या दिखलाता है!? और अगर आँगनवाड़ीकर्मियों द्वारा दी जा रहीं सेवाएँ आवश्यक सेवाएँ हैं, तो फिर उन्हें कर्मचारी का दर्जा क्यों नहीं दिया जा रहा??

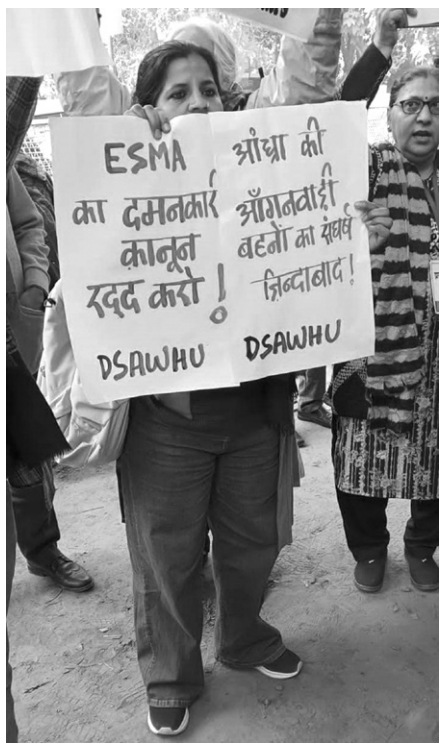

आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों को वॉलण्टियर के नाम पर बेगार खटवाने वाली तमाम राज्य सरकारें और केन्द्र में बैठी भाजपा सरकार ने उनके संघर्ष को कुचलने का यह नया तरीक़ा निकाला है।

‘एस्मा’ लगाने के पीछे आवश्यक सेवाओं के बाधित होने और बच्चों व औरतों की देखरेख के कार्य को हानि पहुँचाने का बचकाना तर्क देने वाली ये सरकारें भूल गयी हैं कि आँगनवाड़ीकर्मी ख़ुद भी ग़रीब मेहनतकश और निम्न मध्यवर्गीय परिवारों से आने वाली औरतें ही हैं, जिन्हें अपना घर भी चलाना होता है। उन्हें चार हज़ार (हेल्पर के लिए) और आठ हज़ार (वर्कर के लिए) की ख़ैरात देकर दिनों-रात खटाया जाता है और इतनी मामूली राशि भी सभी राज्यों में समय से नहीं मिलती है।

यह बात आज बिल्कुल साफ़ है कि आँगनवाड़ी की पूरी स्कीम चलाने के पीछे सरकार की मंशा यह है कि आम तौर पर केयर वर्क के ज़रिये मज़दूरों-मेहनतकशों की श्रमशक्ति का मूल्य घट सके और उसकी पुनरुत्पादन की लागत को कम किया जा सके और वह भी इन्हीं मज़दूरों-मेहनतकशों के घरों की औरतों के श्रम का दोहन करके। इस लूट और शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने पर कहीं पुलिस के दम पर तो कहीं इन दमनकारी क़ानूनों का इस्तेमाल कर उन्हें चुप कराने की हरसम्भव तैयारी इन सरकारों ने कर रखी है। भाजपा सरकार के सत्ता में आने के बाद से मज़दूरों-मेहनतकशों के हक़ों के ऊपर न सिर्फ़ हमले तेज़ हुए हैं बल्कि उनके बचे-खुचे हक़ों को भी छीना जा रहा है और बाक़ी राज्य सरकारें भी इसमें पीछे नहीं हैं।

दिल्ली में हुए विरोध प्रदर्शन की शुरुआत आन्ध्र प्रदेश की जगनमोहन रेड्डी सरकार के दमनात्मक रवैये के ख़िलाफ़ नारों से की गयी। आगे बात रखी गयी कि आज कैसे देश के अलग-अलग राज्यों में आँगनवाड़ीकर्मी अपनी वाजिब माँगों को लेकर सड़कों पर संघर्षरत हैं, लेकिन तमाम चुनावबाज़ पार्टियों की सरकारें उनके आन्दोलन को कुचलने का काम कर रही हैं। दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन (DSAWHU) की प्रवक्ता प्रियम्वदा ने कहा कि अपने तमाम हथकण्डे इस्तेमाल करने के बाद शासक वर्ग उन्हीं हड़तालों के विरुद्ध एस्मा लगाने पर मजबूर होता है जिनकी फ़ौलादी एकजुटता को वह तोड़ नहीं पाता। आन्ध्र सरकार द्वारा आँगनवाड़ीकर्मियों की हड़ताल पर लगाया गया एस्मा इसी बात को पुष्ट करता है।

प्रियम्वदा ने कहा, “हम आन्ध्र प्रदेश की हमारी संघर्षरत बहनों की माँगों का बिना शर्त समर्थन करते हैं और जगमोहन सरकार के इस महिला-मज़दूर विरोधी क़दम की कड़ी शब्दों में भर्त्सना करते हैं। हम यह माँग करते हैं कि एस्मा/हेस्मा जैसे काले क़ानून को फ़ौरन रद्द किया जाये और आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों की सभी माँगों को तत्काल पूरा किया जाये। उन्हें पक्के कर्मचारी का दर्ज़ा दिया जाये। ईएसआई, पीएफ़ व पेंशन जैसी सभी सुविधाएँ मुहैया करायी जाएँ।”

– बिगुल संवाददाता

गुड़गाँव नगर निगम के ठेका ड्राइवर व अन्य मज़दूर अपनी माँगों के लेकर संघर्ष की राह पर!

● शाम मूर्ति

गुड़गाँवनगर निगम के ड्राइवर ठेका कम्पनी इकोग्रीन एनर्जी गुड़गाँव-फ़रीदाबाद प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के तहत कई सालों से कार्यरत हैं, जिन्हें पिछले चार महीने से वेतन न मिलने की वजह से हड़ताल पर जाने के लिए मज़बूर होना पड़ा। लम्बे समय बर्दाश्त करने के बाद, कमरे का किराया, राशन का ख़र्चा, उनके बच्चों स्कूल की फ़ीस न दे पाने व दवा-इलाज की समस्याएँ बहुत बढ़ जाने के बाद मज़दूरों को हड़ताल का रास्ता चुनना पड़ा।

फ़िलहाल कम्पनी के अधिकारियों द्वारा अगामी हफ़्ते तक वेतन की अदायगी किस्तों में करने के तथाकथित आश्वासन पर ड्राइवरों ने एक हफ़्ते के लिए अपनी हड़ताल स्थगित कर दी है।

ज्ञात हो कि क़रीब आठ महीनों से पी.एफ. का पैसा हर महीने मज़दूरों के वेतन से कटौती करके इको ग्रीन कम्पनी ने अपने पास जमा किया हुआ था। इतना ही नहीं बल्कि ठेके पर कार्यरत मज़दूरों के श्रम क़ानूनों के अधिकारों की पूरी तरह से धज्जियाँ खुलेआम उड़ायी जा रही हैं। सिर्फ़ ड्राइवर ही नहीं बल्कि सफ़ाई, सिक्योरिटी गार्ड, मैकेनिक सभी इसकी वजह से परेशान हैं। इसकी वजह से मज़दूरों का गुस्सा बढ़ता चला गया और उन्हें हड़ताल पर जाना पड़ा।

ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री काण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन (AICWU) के साथियों ने ग्रीन एनर्जी गुड़गाँव फ़रीदाबाद प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के सफ़ाईकर्मियों की बुनियादी और जायज़ माँगों के लिए हड़ताल स्थल पर जाकर उनके समर्थन में अपनी बात रखी। वे दोनों दिन धरनास्थल पर साथ रहे। उन्होंने कम्पनी द्वारा तानाशाही व भटकाने के रवैये की सख़्त निंदा की। उन्होंने श्रम विभाग और गुड़गाँव नगर निगम प्रशासन से समय रहते ही इकोग्रीन कम्पनी द्वारा श्रम क़ानूनों के उल्लंघन और उसके इस तानाशाहाना व्यवहार पर तुरन्त सख़्त से सख़्त कार्यवाही करने की माँग की।

इकोग्रीन सफ़ाईकर्मियों का माँगपत्रक :

1. 4 महीने का बकाया वेतन तथा दो साल से बकाया कोविड के पैसे का तुरन्त भुगतान करो!
2. 8 महीने से वेतन से कटौती किये गये पैसे को पी.एफ. खाते में तुरन्त जमा करो!
3. ग़ैर-क़ानूनी ठेका प्रथा पर रोक लगाओ! 8-10 साल से काम कर रहे मज़दूरों को ‘स्थायी काम के लिए स्थायी रोज़गार’ के क़ानूनी प्रावधान के तहत पक्का करो।
4. गाड़ी में किसी प्रकार की टूट-फूट की वजह से ड्राईवर के वेतन में कटौती तुरन्त बन्द करो!
5. महँगाई के हिसाब से वेतन में बढ़ोतरी तुरन्त करो! न्यूनतम वेतन 25000 करो!
6. ड्राइवर को हर पर्ची पर दो रूपये भुगतान के वायदे को तुरन्त लागू करो!
7. ग़ैर-क़ानूनी तरीके से फ्री में ओवरटाइम करवाना बन्द करो! श्रम क़ानूनों के तहत सहमति और दुगनी दर से उसका भुगतान लागू करो!
8. श्रम क़ानूनों के तहत छुट्टियों के प्रावधान को भी तुरन्त लागू करो!
9. मानकों के तहत सुरक्षा के लिए दस्ताने, मास्क, जूते, सेनीटाइजर, ड्रेस व सर्दी की जैकेट आदि तुरन्त दो!
10. वर्कशाप में ज़रूरी स्टाफ़, हेल्पर की भर्ती करे व ज़रूरी रिपेयर का सामान दें।
11. टायलेट, पानी, बुनियादी सुविधाएँ कादीपुर पार्किंग व वर्कशॉप में तुरन्त दो!
12. श्रम क़ानूनों के तहत बोनस व ग्रेच्युटी के प्रावधान को तुरन्त लागू करो!
13. इको ग्रीन कम्पनी, गुरूग्राम नगर निगम, पुलिस व प्रशासन बिना लाईसेंस के लेबर से चलवाई जा रही गाड़ियों पर तुरन्त रोक लगाए!
14. ‘हिट और रन’ के तहत पारित ड्राईवर विरोधी नये क़ानून को वापस लो!

हम अपना अधिकार माँगते, नहीं किसी से भीख माँगते!

गुड़गाँव में किशोर घरेलू कामगार के साथ क्रूरता का एक और मामला

ऐसी बढ़ती घटनाओं के बुनियादी कारण और इनके निवारण के प्रति नज़रिये और दिशा का सवाल

● प्रशान्त कुमार

गुड़गाँव जैसी चमचमाती मेट्रोपॉलिटन सिटी के सेक्टर 67, कुबेर सिटी में 13 साल की लड़की के साथ हुई अमानवीय शोषण व अत्याचार की घटना एक बार फिर सामने आयी है। इस बार एक माँ और उसके 2 बेटों ने किशोर लड़की को घरेलू काम करने के लिये अपने अपार्टमेंट में ग़ुलाम ही नहीं बनाये रखा बल्कि उसके साथ वहशी तरीकों से अत्याचार किये गये। लड़की को नंगा करके वीडियो बनाया गया और उसका यौन शोषण किया गया। इतना ही नहीं, इन वहशी दरिन्दों ने उसके हाथों को एसिड से जला दिया, पीटने के लिए लोहे की रॉड और हथौड़े का इस्तेमाल किया, मुँह पर टेप लगाकर बन्धक बनाकर रखा और अपने कुत्ते को उसे काटने के लिए उकसाया। साथ में धमकी दी गयी कि इस क्रूरता के बारे में किसी को बताया तो उसे वेश्यालय भेज दिया जायेगा और माँ-बाप को जान से मार दिया जायेगा। लड़की की माँ जो ख़ुद एक घरेलू कामगार है, उसने किसी तरह अपनी बेटी को 5 महीने के बाद इन वहशियों के चंगुल से छुड़ाया और पुलिस में रिपोर्ट करायी। बिहार के सीतामढ़ी ज़िले में रहने वाले उसके पिता एक माली का काम करते हैं और 2 साल पहले ही अपने परिवार के साथ ग़रीबी व आर्थिक तंगी की वजह से गुड़गाँव शहर आये थे। यहाँ आकर उन्हें अन्याय और शोषण की इस कड़वी सच्चाई से रूबरू होना पड़ा। इसी शहर में सिक्योरिटी गेटों के पीछे अपनी सुरक्षा के लिए चिन्तित सम्भ्रान्त उच्च व मध्य-मध्य वर्ग समुदाय अपने व्हाट्सएप ग्रुपों में इन घरेलू कामगारों के अधिकारों व सुरक्षा पर कोई चर्चा करने के बजाय उनपर शक़ व संशय ही ज़ाहिर करता है। उनके द्वारा उठायी जा रही माँगों को अनुचित करार देते हुए टीका-टिप्पणी के साथ-साथ ब्लैकलिस्ट (अयोग्य घोषित) करने की फ़िराक में रहता है। हक़ माँगने और सवाल करने पर यातनाएँ देने और उत्पीड़न करने में जरा भी देर नहीं लगाता है।

बीते साल का यह इक़लौता मामला नहीं है। पिछले फ़रवरी में गुड़गाँव की न्यू कालोनी में रहने वाले एक नामचीन बीमा कम्पनी के जनसम्पर्क विभाग में कार्यरत कामकाजी दम्पत्ति द्वारा झारखण्ड से रखी गई 17 वर्षीय महिला घरेलू कामगार के साथ इसी तरह की क्रूरता व यौन उत्पीड़न का मामला सामने आया था। 2015 में भी गुड़गाँव में एक दम्पत्ति द्वारा 13 वर्षीय घरेलू कामगार लड़की को अलमारी में बन्द करने की घटना सामने आयी थी। इसी साल जुलाई में नोएडा (यूपी) के 'महागुन अपार्टमेंट' में बन्धक बनाकर मारपीट करने की घटना सामने आई थी। गुड़गाँव, नोएडा, दिल्ली जैसे इलाकों में मनमर्ज़ी से वेतन, काम के अनिश्चित घण्टे, दिन व छुट्टी का सवाल के साथ-साथ गाली-गलौज, छोटी-मोटी पिटाई, छेड़छाड़ तो आम बात है जो अपनी नौकरी खोने के डर से उन्हें चुपचाप सहना पड़ता है। घरेलू कामगारों में 99 प्रतिशत महिलाएँ ही होती हैं। अगर कोई अत्याचार के ख़िलाफ़ कुछ बोलने की कोशिश भी करता है तो उसे चोरी के इल्ज़ाम में फँसाने की धमकी दी जाती है। वास्तव में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में इन तथाकथित सम्भ्रान्त-सम्पन्न नियोक्ताओं (मालिकों) द्वारा महिला घरेलू कामगारों का किसी न किसी रूप में शोषण और उत्पीड़न आम है। **ध्यान दें कि यही वह खाया-पिया, अघाया, मुटियाया उच्च मध्यवर्ग है जो नरेन्द्र मोदी और भाजपा के गुणगान करता है और राम मन्दिर की "प्राण-प्रतिष्ठा" के नाम पर धर्मध्वजाधारी बनकर देश में दंगे जैसा माहौल बनाने में पर्याप्त योगदान कर रहा है।**

बेशक गुड़गाँव की इस ताज़ा घटना के आरोपी क़ानून की गिरफ़्त में हैं और आरोपियों की पहचान करके उनपर पॉक्सो (यौन अपराधों से बच्चों का बचाव) अधिनियम व अन्य ज़रूरी किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015; भारतीय दण्ड संहिता की धारा 289 (जानवरों की उपेक्षा), 323 (चोट पहुँचाना), 34 (सामान्य इरादा), 344 (ग़लत कारावास), 506 (आपराधिक धमकी), और 509 (किसी महिला की गरिमा का अपमान करना) आदि धाराएँ भी लगा दी गयी हैं। **इतना भी नहीं होगा तो ग़रीब मेहनतक़शों का गुस्सा लावे की तरह फटने का डर भी हुक्मरानों और उनके समर्थक वर्गों को सताता रहता है।**

यह डर ही है जिसके कारण गुड़गाँव का प्रशासन, क़ानून, श्रम और स्वास्थ्य सहित विभिन्न विभागों के अधिकारी तथा एन.जी.ओ. मिलकर घरेलू कामगारों के हितों की रक्षा के उद्देश्य से अधिकारों का एक चार्टर एक सप्ताह में बनाने का दावा भी कर रहे हैं। इसमें न्यूनतम वेतन, काम करने की स्थिति, आयु प्रतिबन्ध और अन्य आवश्यकताओं आदि का उल्लंघन होने पर क़ानून की रूपरेखा तैयार करेगी जिनका नियोक्ताओं को पालन करना होगा। जिसमें आवासीय कल्याण संघों (आर.डब्ल्यू.ए.) को उनकी सोसायटी में काम करने वाले घरेलू कर्मचारियों पर जानकारी (डेटा) एकत्र और सत्यापित करने व नाबालिग के काम पर रोक आदि उपायों पर भी जोर देगा। वास्तव में ऐसी बयानबाज़ी और घोषणाएँ भी तभी सामने आती हैं जब कोई ऐसी घटनाएँ मीडिया की नज़र में और चर्चा में सामने आ जाती हैं।

ऐसा ही एक क़ानून **'असंगठित मज़दूर सामाजिक सुरक्षा क़ानून, 2008'** लाया गया जिसमें न तो न्यूनतम वेतन, समय और सुरक्षा आदि पर कोई स्पष्ट बात है और न उनका उल्लंघन होने पर किसी दण्डानात्मक कार्यवाही का कोई स्पष्ट प्रावधान। **लेकिन इसी प्रशासन के पास इसका कोई जवाब नहीं है कि 2016 में प्रस्तावित घरेलू कामगार कल्याण और सामाजिक सुरक्षा विधेयक ठण्डे बस्ते में क्यों डाल दिया है?** उल्टा नये लेबर क़ानूनों के जरिये मज़दूरों के पहले से अर्जित क़ानूनी अधिकारों को ख़त्म कर घरेलू कामगारों के लिए कल्याण बोर्ड स्थापित करने के दावे किये जा रहे हैं। लेकिन ज़मीनी हक़ीक़त तो हम जानते ही हैं। साल दर साल अनेक मामले सामने आ रहे हैं जिसमें घरेलू कामगारों का उत्पीड़न किया जा रहा है। आइ.एल.ओ. (अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन) ख़ुद इसकी पुष्टि कर चुका है।

दिल्ली एन.सी.आर. में पिछले एक साल में 8 से ऊपर ऐसी भयानक घटनाएँ अख़बारों की सुर्ख़ियाँ बन चुकी हैं। **2018 के गुड़गाँव, फ़रीदाबाद में सर्वेक्षण के मुताबिक, 29% से अधिक महिला घरेलू कामगारों ने काम पर यौन उत्पीड़न तथा 65.6% ने पीछा करना सबसे आम बताया। लगभग 61.8% ने भद्दे इशारे और सीटी बजाने व 52% ने यौन संकेत/सामग्री वाले एस.एम.एस. या व्हाट्सएप सन्देश भेजने का हवाला दिया। यह है मोदी-समर्थक भक्तों के वर्ग का चाल-चेहरा-चरित्र! एक अन्य शोध में पाया गया कि 29% से अधिक महिला घरेलू कामगारों का कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न किया गया है। जिन लोगों ने यौन उत्पीड़न का अनुभव किया, उनमें से 20% ने पुलिस में शिकायत की लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला।** वास्तव में ऐसे प्रकरणों की संख्या कई गुना ज़्यादा है जो खाते-पीते उच्च मध्यवर्ग के पैसे व रसूख़ के चलते सामने नहीं आ पाते हैं। यानी पॉक्सो अधिनियम से लेकर स्त्री विरोधी अपराध को रोकने के लिए कई क़ानून मौजूद तो हैं, लेकिन फिर भी महिला उत्पीड़न से लेकर बलात्कार, यौन उत्पीड़न जैसी घटनाएँ बढ़ती ही जा रही हैं।

ज़्यादातर मामलों में पीड़ित घरेलू कामगार देश के पिछड़े व ग़रीब इलाकों से आते हैं। पश्चिम बंगाल, बिहार और ओडिशा से तस्करी कर लायी गयी नाबालिग लड़कियाँ घरेलू कामगारों में बड़ी तादाद में पायी गयी हैं। बहुतेरे मामलों में अवैध प्लेसमेंट एजेंसियों द्वारा उन्हें रखा जाता है। उनके साथ अत्याचार व शोषण के मामले आये-दिन सामने आते रहते हैं। अन्याय और ऐसी हैवानियत होने पर किसी पुख़्ता सुरक्षा व सूचना तंत्र के अभाव के चलते नाबालिगों को उनके परिवारों से काट दिया जाता है। बोलने पर झूठे चोरी के इल्ज़ाम में फँसाने, बदनाम करने का डर दिखाने से लेकर जान से मारने का डर दिखाकर इन्हें चुप करा दिया जाता है। इसकी वजहों को समझने की ज़रूरत है। आम तौर पर, पुलिस भी इसमें इन उच्च मध्यवर्ग के इन तथाकथित शरीफ़ज़ादों का साथ देती है।

पहली बात तो यह है कि घरेलू कामगार अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्र का हिस्सा है, जो किसी क़ानून के दायरे में नहीं आता। इन अर्थों में यहाँ अनौपचारिकता सबसे ज़्यादा है और इसीलिए संगठित होने की चुनौतियाँ भी ज़्यादा हैं। मज़दूरी, काम के घण्टों और वेतन के लिए कोई क़ानूनी प्रावधान यानी किसी तरह की पुख़्ता भरती व नियुक्ति का देश में क़ानूनी ढाँचा ही नहीं है। तमिलनाडु, महाराष्ट्र, केरल, आन्ध्र प्रदेश जैसे राज्यों में सरकारें घरेलू मज़दूरों को कुछ क़ानूनी अधिकार देने के लिए मज़बूर हुई हैं। लेकिन वास्तव में यह सबको पता ही है कि पैसा-रुतबा व असर-रसूख रखने वालों के पक्ष में ही क़ानून और न्याय झुकता है। 1990 में भारत के शासक वर्ग द्वारा श्रम क़ानूनों को ढीला करने की नयी उदारवादी नीतियों को लागू करने के बाद के पूरे दौर में घरेलू कामगारों की संख्या में भी एक सौ बीस फ़ीसदी की भारी बढ़ोतरी हुई है। 2014 के बाद से केन्द्र और बहुत सारे राज्यों में आज भाजपा की फ़ासीवादी सरकारें सत्ता में बैठीं हैं। तब से आज तक देश में औपचारिक व संगठित क्षेत्र के मज़दूरों के संघर्षों व कुर्बानियों की बदौलत हासिल अधिकारों को भी नये लेबर कोड के ज़रिये छीनने की तैयारी की जा चुकी है। ऐसे में घरेलू कामगारों के लिए अब कोई भी क़ानून और सुरक्षा बिना किसी जुझारू संघर्ष के सम्भव ही नहीं है।

दूसरे पहलू को भी समझने की ज़रूरत है। वह यह कि पूँजीवादी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था और संस्कृति समाज में इतनी बड़ी खाई बना देती है कि उच्च मध्य वर्ग के लोग कामगारों को इन्सान मानते ही नहीं। वे भयंकर ब्राह्मणवादी, जातिवादी, नस्लवादी चेतना रखते हैं और इस प्रकार की चेतना के कारण ही नरेन्द्र मोदी के राजनीतिक दृश्यपटल पर उभरते ही, यह वर्ग सबसे तेज़ी से उसका भक्त बना। घरेलू कामगारों पर अत्याचार करना वे अपना हक़ समझते हैं, और उन्हें एकदम ग़ुलामों की तरह खटाते हैं। वैसे तो पूँजीवादी व्यवस्था स्त्री के श्रम का अवमूल्यन करती है और उसके सस्ते श्रम के शोषण को आसान बना देती है।

घरेलू कामगार भी समूची शोषित मज़दूर आबादी का ही अंग हैं। वे भी अपनी श्रमशक्ति धनिक व उच्च मध्यवर्ग के परिवारों को बेचते हैं। वे कोई किसी पूँजीपति के लिए माल-उत्पादन नहीं कर रहे हैं और पूँजीवादी अर्थों में उनका श्रम मूल्य नहीं पैदा कर रहा। वह ग़ैर-उत्पादन श्रम है। लेकिन उनका भी शोषण ही हो रहा है क्योंकि वे अपनी श्रमशक्ति बेच रहे हैं और बदले में एक औसत कार्यदिवस कार्य करते हैं और जीने की खुराक बराबर मज़दूरी पाते हैं। भयंकर बेरोज़गारी की स्थिति में बेहद कम मज़दूरी और साथ ही औरतों की दोयम/ग़ुलामी की स्थिति के कारण एक विशाल आबादी आज घरेलू कामगारों के तौर पर काम करने के लिए मजबूर है।

दूसरा, घरेलू कामगारों में पुरुष भी आज बड़ी संख्या में हैं लेकिन बहुसंख्या स्त्रियों की ही है। पूँजीवादी समाज में स्त्री शरीर को एक उपभोग की वस्तु के रूप पेश किया जाता है। इस सोच व संस्कृति को पूँजीवादी मीडिया व फिल्मों के जरिये खाद-पानी दिया जा रहा है। इसी कुसंस्कृति की वजह से इस पूँजीवाद समाज में स्त्री विरोधी मानसिकता को और बढ़ावा मिल रहा है। गुड़गाँव की इस घटना में भी किशोर महिला कामगार को नग्न कर वीडियो बनाने का घिनौना कृत्य इस मानसिकता को ही दर्शाता है। इसलिए ऐसे अपराधों की जड़ में पूँजीवादी व्यवस्था और और उसके द्वारा सहयोजित कर ली गयी पितृसत्ता के अपवित्र गठजोड़ को भी समझना होगा।

तीसरे, कुछ लोगों को यह चौंकाने वाला तथ्य लगता है कि यहाँ पर घरेलू कामगार का यौन शोषण करने वाले दो नौजवान थे और उनकी माँ इस काम में उनका साथ दे रही थी! असल में भारतीय समाज तो शुरू से पितृसत्ता की समस्या से ग्रसित है। पितृसत्ता का एक पहलू जो पुरुष श्रेष्ठताबोध को दर्शाता है। लेकिन समाज में मध्य वर्ग या उच्च मध्य वर्ग की स्त्रियाँ भी स्वयं पितृसत्ता का शिकार होती हैं और साथ ही वे पितृसत्ता की पुरुषों से भी अच्छी वाहक होती हैं। विशेष तौर पर, मध्यवर्ग व उच्च मध्यवर्ग की कई स्त्रियाँ उच्च वर्ग के सुख और सुरक्षा के बदले अपनी स्वतन्त्रता को गिरवी रख देती हैं और पुरुषों से भी ज़्यादा पुरुषवादी और पितृसत्तावादी बन जाती हैं। मज़दूर वर्ग की स्त्रियों के प्रति भी इनका नज़रिया अमानवीय होता है। वे सामाजिक रूप से दमित होने के बावजूद अपनी उच्चवर्गीय अवस्थिति की वजह से मालिक जैसा ही व्यवहार करती है, समय पड़ने पर स्त्री विरोधी अपराधों में ये अपने वर्ग के पुरुषों का ही साथ देती हैं। यह वर्गीय पहलू इस घटना में भी नज़र आता है।

चौथा पहलू जो समझने की ज़रूरत है वह यह कि 2014 के बाद केन्द्र और बहुत से राज्यों में फ़ासीवादी भाजपा सरकारें सत्ता में बैठीं। इन सरकारों के दौर में समाज में महिलाओं के प्रति हिंसक प्रवृत्ति को बढ़ावा और भी ज़्यादा मिल रहा है। यूपी में हाथरस जैसी घटनाओं ने साबित कर दिया है कि पूँजीवाद और इसके संकट से पैदा हुए इस फ़ासीवादी निज़ाम में स्त्रियाँ कहीं भी सुरक्षित नहीं हैं। न तो अपने घरों में और न ही अपने कार्यस्थलों पर। आये दिन घरेलू कामगार महिलाओं के साथ छेड़खानी, बलात्कार व हत्या के मामले सामने आ रहे हैं। फ़ासीवादी सत्ता की प्रवृत्ति स्वयं ही स्त्री-विरोधी होती है। भाजपा के आपराधिक पृष्ठभूमि के नेता-मंत्री ख़ुद नियमित तौर पर स्त्री-विरोधी बयानों व घटनाओं के आरोपी पाये जाते हैं। जिस पार्टी के 43 प्रतिशत सांसदों, विधायकों के ऊपर बलात्कार, हत्या के गम्भीर मामले दर्ज

(पेज 16 पर जारी)

ग्लोबल डे ऑफ़ एक्शन फ़ॉर गाज़ा के मौक़े पर भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी व अन्य जन संगठनों ने कई शहरों में प्रदर्शन किया

13 जनवरी को 'ग्लोबल डे ऑफ एक्शन फॉर गाज़ा' (गाज़ा के लिए दुनियाभर में कार्रवाई का दिन) के दिन भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी द्वारा दिल्ली में प्रदर्शन आयोजित किया गया। इसमें इज़रायल का झण्डा जलाया गया और इज़रायली प्रधानमंत्री नेतन्याहू व अमेरिकी राष्ट्रपति बाइडेन का पुतला फूँका गया। साथ ही नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन, न्यू सोशलिस्ट प्रैक्सिस के साथियों द्वारा हैदराबाद और विजयवाड़ा में हुए साझा प्रदर्शनों में भागीदारी की गयी।

ज्ञात हो कि 7 अक्टूबर से इज़रायल द्वारा फ़िलिस्तीन की जनता के जारी क़त्लेआम में अब तक 23,084 लोग मारे जा चुके हैं। इसमें 9600 बच्चे अभी तक अपनी जान गवाँ चुके हैं और घायलों की संख्या 59,000 तक पहुँच चुकी है। इसके बावजूद फ़िलिस्तीन की जनता इज़रायल के आगे झुकी नहीं और अभी भी उनके प्रतिरोध ने इज़रायल को पीछे हटने पर भी मज़बूर किया है।

1948 में फ़िलिस्तीनियों का बड़े पैमाने पर क़त्ले-आम किया गया था। इस समय को फ़िलिस्तीनी जनता 'नकबा या 'विपदा' के रूप में जानती है, जब यूरोपीय ज़ायनवादी हत्यारों ने ब्रिटेन द्वारा दिये गये हथियारों के बूते करीब 15,000 निहत्थे और बेगुनाह फ़िलिस्तीनी बच्चों, औरतों और आदमियों का बर्बर नरसंहार किया था, करीब 600 फ़िलिस्तीनी शहरों को उजाड़ दिया था, अनगिनत गाँवों को जला डाला था और तत्कालीन फ़िलिस्तीन के 80 प्रतिशत बाशिन्दों, यानी करीब 7 लाख लोगों को विस्थापित कर आस-पड़ोस के देशों में शरणार्थी में तब्दील कर दिया था। लेकिन नकबा कोई घटना नहीं थी। नकबा कभी ख़त्म नहीं हुआ और आज भी जारी है। आज भी इज़रायली सेटलर, यानी फ़िलिस्तीनियों को आज भी उनके घरों से खदेड़कर उनके घरों, ज़मीन और खेतों पर कब्ज़ा करने वाले लोग, आज भी फ़िलिस्तीनी जनता के कत्ले-आम और विस्थापन को जारी रखे हुए हैं। पिछले 75 साल बीतने के बाद आज दुनिया में 70 लाख फ़िलिस्तीनी शरणार्थी हैं। इसके अलावा, करीब 60 लाख फ़िलिस्तीनी वेस्ट बैंक और गाज़ा में रहते हैं, जो इज़रायली कब्ज़े में हैं। इन फ़िलिस्तीनियों को इनके ही देश में शरणार्थी बनाकर रखा गया है। उनके खिलाफ़ नस्लवादी अपॉर्थाइड यानी विलगाव की नीति इज़रायली ज़ायनवादियों ने थोप रखी है। उनके लिए पूरे इज़रायल में चेकपोस्ट, अलग सड़कें, अलग मुहल्ले बनाकर रखे गये हैं और वहाँ से भी इज़रायली सेटलर उपनिवेशवादी लगातार उन्हें बेदख़ल कर रहे हैं। गाज़ा की स्थिति इसमें सबसे भयावह है। 2006 में गाज़ा की बहादुर जनता के संघर्ष के कारण इज़रायली ज़ायनवादी हत्यारों को वहाँ से भागना पड़ा। अन्य सेक्युलर कौमी आज़ादी के लिए लड़ने वाली शक्तियों को इज़रायल ने साम्राज्यवादियों की मदद से और अरब विश्व के समझौतापरस्त बुर्जुआ शासकों की मदद से कमज़ोर कर दिया था। फ़िलिस्तीनी जनता की आज़ादी का समर्थन करने या उसके वीरतापूर्ण मुक्ति संघर्ष का समर्थन करने के लिए आपको हमास का विचारधारात्मक समर्थक होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अगर हमास के बारे में बात करे तो फ़िलिस्तीनी जनता का मुक्ति संघर्ष तब भी जारी था, जब हमास नाम कोई संगठन पैदा भी नहीं हुआ था और आज भी वह जारी है। निश्चित ही, हमास एक इस्लामिक संगठन ही है। मज़दूर वर्ग के नज़रिये से राजनीतिक और विचारधारात्मक तौर पर उससे कोई एकता नहीं बन सकती है। जब हम फ़िलिस्तीन के जारी मुक्ति संघर्ष का समर्थन करते हैं तो हम कतई हमास का विचारधारात्मक तौर पर समर्थन नहीं करते, बल्कि फ़िलिस्तीनी जनता द्वारा इज़रायली ज़ायनवादी हत्यारों और उनके औपनिवेशिक कब्ज़े के विरुद्ध जारी संघर्ष का समर्थन करते हैं। किसी अन्य सेक्युलर, प्रगतिशील व क्रान्तिकारी नेतृत्व की अनुपस्थिति में जनता अपने संघर्ष को स्थगित नहीं कर देती है, वह उसे जारी रखती है, जो भी संसाधन उसके पास होते हैं और जो भी नेतृत्व निर्णायक रूप से लड़ने को तैयार होता है उसके साथ होती है।

भारत में भी मीडिया इज़रायल को पीड़ित पक्ष के रूप में दिखला रहा है और एक ऐसी छवि पेश कर रहा है मानो इतिहास 7 अक्टूबर को हमास के नेतृत्व में हुए हमले के साथ ही शुरू हुआ। वह यह नहीं बता रहा है कि गाज़ा पर पिछले 16 वर्षों से भी अधिक समय से इज़रायल ने ज़मीन, हवा और समुद्र तीनों ओर से एक नाकेबन्दी थोप रखी है। साथ ही भारत के हिन्दुत्व फ़ासीवादियों और ज़ायनवादियों की प्रगाढ़ एकता है। भारत इज़रायल के हथियारों का सबसे बड़ा ख़रीदार है। वहीं दोनो के खुफ़िया तन्त्र में भी काफ़ी समानता है। ज्ञात हो कि जासूसी उपकरण पेगासस भारत को देने वाला देश इज़रायल ही है। यह भी एक कारण है कि मोदी सरकार देश भर में जारी इज़रायल के प्रतिरोध से घबरायी हुई है, कि कहीं इससे उनके ज़ायनवादी दोस्त नाराज़ न हो जायें। यही कारण है कि फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा सारी संवैधानिकता और वैधानिकता को ताक़ पर रखकर फ़िलिस्तीन के समर्थन में हो रहे प्रदर्शनों को कुचला गया।

गाज़ा की जनता तक न तो पर्याप्त मात्रा में भोजन पहुँचने दिया जाता है, न ईंधन और न ही अन्य आवश्यक वस्तुएँ और सेवाएँ। नतीजतन, दुनिया में सबसे ज़्यादा जनसंख्या घनत्व रखने वाली यह 'खुली जेल' फ़िलिस्तीनियों के लिए एक क़ब्रगाह बनी हुई है, जहाँ फ़िलिस्तीनी बच्चे-बूढ़े और जवान एक धीमी मौत मर रहे हैं। 7 अक्टूबर को फ़िलिस्तीनी जनता ने जेल तोड़ी और अपने औपनिवेशिक उत्पीड़कों, यानी ज़ायनवादी इज़रायल पर हमला बोला। इस हमले के विरुद्ध इज़रायली उपनिवेशवादियों को "आत्मरक्षा" का उतना ही अधिकार है, जितना कि भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों को भगतसिंह व उनके साथियों व अन्य क्रान्तिकारियों द्वारा की गयी कार्रवाइयों के ख़िलाफ़ था, या अल्जीरिया में अल्जीरियाई मुक्ति योद्धाओं के हमले के विरुद्ध फ्रांसीसी उपनिवेशवादियों को था जिन्होंने हथियारों के दम पर अल्जीरिया पर कब्ज़ा कर रखा था।

दुनिया भर का साम्राज्यवादी मीडिया और हमारे देश का गोदी मीडिया चीज़ों को सिर के बल खड़ा कर देता है। हर जगह फ़ासीवादी और प्रतिक्रियावादी शासक साम्राज्यवादी लूट और कब्ज़े के पक्ष में होते हैं, तब तक जब तक कि इस कब्ज़े का निशाना वे ख़ुद न हों। लेकिन जनता को सच्चाई जाननी चाहिए। मेहनतकश वर्ग को हर जगह दमित-शोषित जनता के साथ खड़ा होना चाहिए। गाज़ा में जो हो रहा है, उसके बारे में अगर हम तटस्थ रहेंगे, यह सोचेंगे कि हज़ारों किलोमीटर दूर हो रहे नरसंहार से हमारा क्या मतलब, तो कल हमारे देश के फ़ासीवादी और प्रतिक्रियावादी हुक्मरान जब हमारे साथ ऐसा ही सुलूक करेंगे, तो हम भी अकेले होंगे। सर्वहारा वर्ग के अन्तरराष्ट्रीयतावाद का यह बुनियादी उसूल होता है कि हम दुनिया में कहीं भी होने वाले अन्याय के विरुद्ध अपनी आवाज़ को बुलन्द करते हैं। जो सर्वहारा वर्ग ऐसा नहीं करता वह स्वयं भी शोषित और दमित रहने के लिए अभिशप्त होता है।

हर मेहनतकश और मज़दूर को यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि गाज़ा और समूचे फ़िलिस्तीन की संघर्षरत जनता के साथ एकजुटता रखने का मुसलमान होने से भी कोई रिश्ता नहीं है। साम्राज्यवादी प्रचार के असर के कारण कम ही लोग जानते हैं कि फ़िलिस्तीन में अरबी यहूदी और अरबी ईसाई भी रहते हैं, वे भी उतनी ही शिद्दत से फ़िलिस्तीन की आज़ादी के पक्षधर हैं जितनी शिद्दत से फ़िलिस्तीनी मुसलमान। फ़िलिस्तीनी मुसलमान आज से नहीं बल्कि सदियों से अरबी यहूदियों और अरबी ईसाइयों के साथ सामंजस्य में रहते आये हैं। यह बेवजह नहीं है कि इज़रायली राज्य की सीमाओं के भीतर और साथ ही गाज़ा और वेस्ट बैंक में अरबी यहूदियों और अरबी ईसाइयों के साथ भी इज़रायली ज़ायनवादी हत्यारे उसी किस्म का नस्लवादी और दमनकारी बर्ताव करते हैं, जैसा वे फ़िलिस्तीनी मुसलमानों के साथ करते हैं। आपको शायद पता भी होगा कि गाज़ा पट्टी पर अपने नये नरसंहारक हमले के दौरान की जा रही भयंकर बमबारी में इज़रायल ने गाज़ा के ईसाई लोगों और उनके चर्चों को ख़ास तौर पर निशाना बनाया है। हम इस पूरी बात को समझने में तब ग़लतियाँ कर बैठते हैं, जब हम इसे मुसलमानों और यहूदियों के बीच के टकराव के रूप में देखते हैं, जबकि वास्तव में यह एक ग़ुलाम और उपनिवेश बनायी गयी कौम और इज़रायली ज़ायनवादी यूरोपीय उपनिवेशवादियों के बीच का संघर्ष है। यह एक गुलाम देश का गुलाम बनाने वाले उपनिवेशवादियों के विरुद्ध संघर्ष है।

हमारे देश में इस मामले की पूरी जानकारी न होने के कारण उतने बड़े पैमाने पर अभी तक इज़रायल द्वारा जारी गाज़ा की जनता के नरसंहार के विरुद्ध बड़े प्रदर्शन नहीं हो सके हैं। हमारे देश में भी जगह-जगह सैंकड़ों प्रदर्शन हुए हैं, जिन्हें दबाने की मोदी सरकार ने पूरी कोशिश की है। लेकिन ये प्रदर्शन और भी बड़े होंगे, यदि फ़िलिस्तीनी जनता के वीरतापूर्ण संघर्ष और घृणित इज़रायली नस्लवादी ज़ायनवादी उपनिवेशवाद के बारे में बड़े पैमाने पर लोगों को जानकारी दी जाये। हमारे देश में भी इंसाफ़पसन्द लोगों की कोई कमी नहीं है। लेकिन हमें फ़िलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष के इतिहास और उसके वर्तमान के बारे में और ज़ायनवादी इज़रायली उपनिवेशवाद की गन्दी सच्चाई के बारे में पूरे देश की जनता को बताना होगा। यह क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग का कर्तव्य है कि समूची मेहनतकश जनता को वह सच से अवगत कराये और उसके आधार पर उसे जागृत, गोलबन्द और संगठित करे। यह काम आज हमें करना ही होगा।

इज़रायली उपनिवेशवादी राज्य पहले नहीं था। वह आगे भी नहीं रहेगा। एक सेक्युलर, जनवादी और समाजवादी फ़िलिस्तीन होगा जहाँ मुसलमान, यहूदी और ईसाई व अन्य समुदायों की जनता साथ में रहेगी। आज इस दिशा में प्रगति के लिए कोई नेतृत्वकारी राजनीतिक ताक़त नहीं है। लेकिन आज का तात्कालिक कार्यभार फ़िलिस्तीनी जनता के लिए उनकी कौमी आज़ादी है। इस कौमी आज़ादी के बाद अपना भविष्य किस प्रकार और कैसे निर्मित करना है, यह फ़िलिस्तीनी जनता तय करेगी। निश्चित ही, फ़िलिस्तीनी सर्वहारा वर्ग और आम मेहनतकश जनता इस कौमी आज़ादी की लड़ाई में भी आगे की कतारों में खड़ी है और उसके आगे समाजवाद के लिए संघर्ष में भी वह नेतृत्वकारी भूमिका में होगी। आज का कार्यभार जो इतिहास के एजेण्डे पर पहला बिन्दु है, वह है इज़रायली उपनिवेशवादी राज्य का समूल नाश, साम्राज्यवादी दमन और लूट का फ़िलिस्तीन से सफ़ाया और एक सेक्युलर और जनवादी फ़िलिस्तीन की स्थापना।

– बिगुल संवाददाता

मज़दूरों-मेहनतकशों को इस साम्प्रदायिक साज़िश को सिरे से नकारना होगा वरना आने वाले साल उनके लिए विनाशकारी होंगे !

(पेज 1 से आगे)

सुरक्षा, बेहतर काम और जीवन के हालात, बेहतर मज़दूरी, व अन्य श्रम अधिकार मुहैया कराने में बुरी तरह से नाकाम मोदी सरकार वही रणनीति अपना रही है, जो जनता की धार्मिक भावनाओं का शोषण कर उसे बेवकूफ़ बनाने के लिए भारतीय जनता पार्टी और उसका आका संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हमेशा से अपनाते रहे हैं। चूँकि मोदी सरकार के पास पिछले 10 वर्षों में जनता के सामने पेश करने को कुछ भी नहीं है, इसलिए वह रामभरोसे सत्ता में पहुँचने का जुगाड़ करने में लगी हुई है। **इसके लिए मोदी-शाह की जोड़ी के पास तीन प्रमुख हथियार हैं : पहला, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का देशव्यापी सांगठनिक काडर ढाँचा; दूसरा, भारत के पूँजीपति वर्ग की तरफ़ से अकूत धन-दौलत का समर्थन; और तीसरा, कोठे के दलालों जितनी नैतिकता से भी वंचित हो चुका भारत का गोदी मीडिया, जो खुलेआम साम्प्रदायिक दंगाई का काम कर रहा है और भाजपा व संघ परिवार की गोद में बैठा हुआ है।**

यह जो सबकुछ चल रहा है, इसके बारे में कई सवाल हैं, जो एक मज़दूर को, एक मेहनतकश को पूछने चाहिए। आइए, एक-एक करके इन सवालों पर विचार करते हैं।

मन्दिर बनवाना, उसका उद्घाटन करवाना और उसे लेकर प्रचार करना क्या किसी सरकार का काम होता है?

मालिकों की जमात के पूँजीवादी लोकतन्त्र के मानकों से भी देखें तो किसी देश में मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, गुरद्वारे बनवाना सरकार का काम नहीं होता है। यह धार्मिक संस्थाओं का काम होता है, जिसमें धर्म को मानने वाले लोग होते हैं। और एक सेक्युलर पूँजीवादी लोकतन्त्र में धर्म पूरी तरह से लोगों का व्यक्तिगत मसला होता है। लेकिन भारत में पूँजीवाद फ्रांस या अमेरिका की तरह किसी जनवादी क्रान्ति के ज़रिये तो आया नहीं है! यह ज़मीन्दारों के वर्ग के साथ समझौते करके और उसे क्रमिक प्रक्रिया में पूँजीवादी भूस्वामी में तब्दील होने का मौका देते हुए, खरामा-खरामा आया है। नतीजतन, यहाँ क्रान्तिकारी जनवाद की ज़मीन हमेशा से बेहद कमज़ोर रही है। साम्राज्यवाद के दौर में जन्मे यहाँ के बौने लेकिन चालाक पूँजीपति वर्ग में यह दम ही नहीं था कि वह सेक्युलरिज़्म व अन्य जनवादी उसूलों पर अमल कर पाता। यहाँ की धर्मनिरपेक्षता का सच्चे सेक्युलरिज़्म से कोई लेना-देना नहीं रहा है। धर्म को राज्य व सामाजिक जीवन से पूर्ण रूप से अलग करने के सेक्युलर उसूल की जगह इसने 'सर्वधर्म समभाव' का धोखेबाज़ी भरा जुमला अपनाया जिसका असली मतलब यह था कि मज़दूरों और मेहनतकशों को बाँटने और बेवकूफ़ बनाने के लिए हर धर्म का समानतापूर्ण तरीके से इस्तेमाल करो!

सच्चे सेक्युलर व जनवादी उसूलों के अनुसार, यदि सरकार में मौजूद कोई व्यक्ति ईश्वर में आस्था रखता भी है, तो अपने सरकारी काम, अपनी राजनीतिक गतिविधियों में वह कभी भी अपने धर्म या ईश्वर को नहीं ला सकता है। वजह यह है कि निजी जीवन में आस्था के अनुसार चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, सिख हो या ईसाई हो, या फिर वह नास्तिक ही क्यों न हो, वह केवल किसी एक धर्म या सम्प्रदाय के लोगों का नुमाइन्दा नहीं होता है। एक पूँजीवादी देश में भी, कम-से-कम जब तक वह सेक्युलर होने का दावा करता है, कोई प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री, विधायक, सांसद या पार्षद क़ानूनी व औपचारिक तौर पर हरेक नागरिक का नुमाइन्दा होता है, वह हरेक नागरिक का प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री, सांसद, विधायक या पार्षद होता है, चाहे किसी ने उसे वोट दिया हो या न दिया हो। इसलिए वह अपने व्यक्तिगत धर्म या आस्था को अपने राजनीतिक जीवन में कहीं भी नहीं आने दे सकता। **यदि वह ऐसा करता है, तो ज़ाहिर है कि वह अपने राजनीतिक फ़ायदे के लिए, सत्ता के लिए लोगों की धार्मिक भावनाओं का शोषण करना चाहता है।**

कोई नौकरशाह, कोई जज या अधिकारी और साथ ही देश का मीडिया भी जनता के प्रति ही जवाबदेह होता है। वह किसी एक धर्म या आस्था का प्रचार नहीं कर सकता और न ही उसका कोई सम्बन्ध मन्दिरों-मस्जिदों के उद्घाटनों से होता है। औपचारिक जनवादी अर्थों में कहें तो मीडिया का काम होता है जनता के असल मुद्दों को उभारना और उन पर लोगों को जागरूक और सचेत करना। उसी प्रकार सरकारी मशीनरी का काम होता है जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करना, सरकारी योजनाओं को लागू करवाना, जनता की दिक़्क़तों को दूर करने के लिए कार्रवाई करना। और न्यायपालिका का काम होता है यह सुनिश्चित करना कि जनता को कम-से-कम पूँजीवादी दायरे में बुर्जुआ न्याय मिले। कम-से-कम बचपन से हमें बताया तो यही गया है। लेकिन हमारे देश में प्रधानमन्त्री, भाजपा के तमाम मुख्यमन्त्री, भाजपा के तमाम सांसद, विधायक व पार्षद खुलेआम राम मन्दिर के प्रचार में लगे हुए हैं, इसमें जनता के हज़ारों करोड़ रुपये पानी की तरह बहाये जा रहे हैं और धार्मिक उन्माद पैदा किया जा रहा है। समूची सरकारी मशीनरी को इस काम में झोंक दिया गया है ताकि मोदी-शाह की जोड़ी फिर से सत्ता में पहुँच सके।

कोई सरकार जो सही मायने में सेक्युलर हो, वह इस प्रकार की कार्रवाई कर ही नहीं सकती है। लेकिन हमारे देश में न्यायपालिका तक इस राजनीतिक अश्लीलता पर चुप्पी साधे हुए है। यह किसी प्रकार से क़ानूनी है कि बाक़ायदा सरकारी संस्थाओं का इस्तेमाल करके एक विशिष्ट धर्म या आस्था के प्रतीकों, पूजास्थलों व देवी-देवताओं का प्रचार किया जा रहा है? लेकिन हमारे देश का सुप्रीम कोर्ट तक इस पर चुप्पी साधे हुए है।

सरकार किसलिए होती है? औपचारिक नियमों व सिद्धान्तों के अनुसार चलें, जो पूँजीवादी किताबों तक में पढ़ाये जाते हैं, तो सरकार एक *सामाजिक क़रारनामे* के तौर पर अस्तित्व में आती है, जिसमें समाज के नागरिक सामूहिक तौर पर अपनी सम्प्रभुता, यानी अपना शासन स्वयं करने के अधिकार, को सरकार के हवाले करते हैं, उसे अपना प्रतिनिधि घोषित करते हैं और *बदले में* सरकार को जनता को रोटी, कपड़ा, मकान, रोज़गार, पढ़ाई, दवा-इलाज, पीने योग्य पानी, बिजली, सड़कें, सुरक्षा व अन्य सभी आवश्यक वस्तुएँ व सेवाएँ मुहैया करानी होती है। **यदि सरकार ऐसा नहीं करती, तो उसे सरकार बने रहने का कोई हक़ नहीं है।**

धर्म हरेक नागरिक का पूरी तरह से निजी मामला होता है। कोई व्यक्ति कौन-सा धर्म मानता है या कोई भी धर्म नहीं मानता, यह किसी अन्य नागरिक का, किसी सामाजिक या राजनीतिक मंच का मसला नहीं होता, और यदि कोई व्यक्ति उसे सामाजिक या राजनीतिक जीवन में घुसाता है तो एक सेक्युलर देश की सरकार उस व्यक्ति पर आपराधिक मुकदमा दर्ज़ करेगी। लेकिन हमारे देश में उल्टी गंगा बह रही है। यहाँ स्वयं सरकार ही धार्मिक उन्माद फैलाने का काम कर रही है, ताकि हरेक आर्थिक मोर्चे पर फ़ेल सत्ताधारी फ़ासीवादी गिरोह सत्ता में बरक़रार रहे।

130 करोड़ की आबादी में से 80 करोड़ लोग 5 किलो राशन के बूते जी रहे हैं। वे बेरोज़गारी व ग़रीबी के इस कदर मारे हुए हैं कि लगातार अर्द्ध-भुखमरी और कुपोषण में जीना उनकी नियति बन गया है। ऊपर से मोदी सरकार व अन्य भाजपा सरकारें ये 5 किलो राशन (जो अक्सर बेहद ख़राब गुणवत्ता का या सड़ा हुआ भी निकलता है) देने का इस धूम-धड़ाके से श्रेय लेने का प्रयास करतीं हैं, मानो उन्होंने जनता को सामाजिक और आर्थिक न्याय दे डाला हो! जबकि यह शर्म की बात है कि हमारे देश की 70 फीसदी से ज़्यादा जनता को आज सरकार के ख़ैराती राशन से काम चलाना पड़ रहा है। ताज्जुब की बात नहीं है कि मोदी सरकार पिछले 10 वर्षों में वे सारे काम करने में बुरी तरह से नाकाम रही है, जो पूँजीवादी जनवादी मानकों से भी एक सरकार को करने चाहिए और इतनी बुरी तरह से नाकाम रही है कि उसकी कोई मिसाल नहीं मिलती। नोटबन्दी से लेकर कोरोना काल के कुप्रबन्धन व अनियोजित लॉक डाउन से लेकर, जीएसटी व पेट्रोल उत्पादों पर अप्रत्यक्ष करों के अभूतपूर्व बोझ तक देखें तो मोदी सरकार जितना न तो जनता को किसी ने लूटा है और न ही पूँजीपतियों के हितों में अर्थव्यवस्था का इस क़दर कुप्रबन्धन किया है। पिछले 10 सालों में ही अम्बानी, अडानी, टाटा, बिड़ला आदि की सम्पत्ति में इतनी बढ़ोत्तरी हुई है जिसकी हमारे देश के इतिहास में कोई मिसाल नहीं मिलती। इतने कम समय में इन धनपशुओं की सम्पत्ति में जो बढ़ोत्तरी हुई है, उसकी दुनिया में भी कम ही मिसालें मिलेंगी। वजह यह है कि जनता की लूट-खसोट के ऐसे कीर्तिमान कभी नहीं बने।

मज़दूर ख़ुद जानते-समझते हैं कि पिछले 10 वर्षों मालिक, ठेकेदार व पूँजीपति वर्ग के अन्य हिस्से उसके प्रति कितने आक्रामक हो गये हैं। मज़दूरी की औसत दर में मामूली-सी सांकेतिक बढ़ोत्तरी हुई है, जिसकी तुलना यदि महँगाई की दर से करें तो वास्तव में मज़दूर वर्ग व मेहनतकश जमात की औसत वास्तविक मज़दूरी घटी है। मोदी सरकार नये लेबर कोड लाकर मज़दूरों को संगठित होने की सूरत में क़ानूनी तौर पर जो औपचारिक सुरक्षा मिल सकने की क्षीण सम्भावना थी, वह भी ख़त्म कर रही है, ताकि पूँजीपतियों को लेबर कोर्ट आदि का थोड़ा भी सरदर्द न झेलना पड़े। वैसे भी लेबर कोर्टों की पूरी व्यवस्था को फैक्ट्री इंस्पेक्टरों, लेबर इंस्पेक्टरों व अन्य स्टाफ़ की वर्षों से भर्ती न करके बरबाद कर दिया गया है। वास्तव में, पिछले 10 सालों में एक ऐसी स्थिति मोदी सरकार ने पैदा की है कि जितनी थोड़ी-बहुत सुनवाई मज़दूरों को लेबर कोर्ट व सिविल कोर्ट में मिल जाया करती थी, अब वह भी नहीं मिलती है। हालाँकि पहले भी संगठित हुए बिना व यूनियन के समर्थन के बिना किसी मज़दूर को बिरले ही इन कोर्टों में न्याय मिलता था और वह वर्षों तक अदालतों के चक्कर काटते चप्पलें घिस देता था, बाल सफेद कर देता था। लेकिन अब यूनियनों के समर्थन के साथ भी लेबर कोर्टों से कोई न्याय मिलने की उम्मीद नहीं रह गयी है। कारखानों के निरीक्षण की माँग पर लेबर कोर्ट ख़ुद ही हाथ खड़े कर देते हैं और कहते हैं कि इंस्पेक्टर ही नहीं हैं और स्टाफ़ ही नहीं हैं कि कारखानों में सुरक्षा, न्यूनतम मज़दूरी आदि का निरीक्षण किया जा सके। **पिछले 10 सालों में मोदी सरकार ने सुनिश्चित किया है कि जब तक औपचारिक तौर पर श्रम क़ानून बने हुए हैं, तब तक भी उनकी प्रभाविता को पूरी तरह से ख़त्म कर दिया जाये। इसीलिए श्रम क़ानूनों को लागू करने वाली मशीनरी को ही पूरी तरह से मोदी सरकार बरबाद कर चुकी है और अभी भी कर रही है।**

एक ऐसे देश में जहाँ रोज़ 5 हज़ार से ज़्यादा बच्चे भूख व कुपोषण से मर जाते हों, जहाँ 50 प्रतिशत से ज़्यादा औरतें ख़ून की कमी का शिकार हों, जहाँ 30 करोड़ से ज़्यादा लोग बेरोज़गार घूम रहे हों और आधे से ज़्यादा नौकरी ढूँढ रहे नौजवान बेरोज़गार ढूँढ रहे हों, जहाँ 14 करोड़ से भी ज़्यादा ग़रीब किसान सरकारी ऋण व समर्थन के अभाव में धनी फार्मरों, कुलकों व सूदख़ोरों के क़र्ज़ में दबकर लाखों की संख्या में आत्महत्याएँ कर रहें हों, जहाँ हर मिनट एक स्त्री-विरोधी अपराध होता हो जिसमें अक्सर ख़ुद सत्ताधारी भाजपा के लोग शामिल हुआ करते हों, **वहाँ पर हज़ारों करोड़ रुपये राम मन्दिर की "प्राण-प्रतिष्ठा" के नाम पर बहाना, समूची सरकारी मशीनरी को उसमें झोंक देना और सत्ताधारी पार्टी का इसके ज़रिये धार्मिक उन्माद फैलाने में लग जाना क्या शुद्धत: राजनीतिक अश्लीलता, घटियाई और सीनाजोरी नहीं है?** यह भला किसी सरकार का काम कबसे होने लगा? वास्तव में, जनता के प्रति सरकार का जो कर्तव्य व जवाबदेही होती है, उसे पूरा करने में तो मोदी सरकार पूरी तरह से नाकाम रही है। यही वजह है कि भाजपा मन्दिर राजनीति के तन्दूर को फिर से गर्म करने के लिए हज़ारों करोड़ रुपये बहा रही है।

अगर मोदी सरकार सफल है तो वह हज़ारों करोड़ रुपये मन्दिर प्रचार में बहाने के बजाय रोज़गार, शिक्षा, चिकित्सा व रिहायश सम्बन्धी अपनी योजनाओं व अन्य जनकल्याणकारी योजनाओं का प्रचार क्यों नहीं करती?

अपनी जन कल्याणकारी योजनाओं का प्रचार तो मोदी सरकार तब करेगी जब जनता का पिछले 10 सालों में कोई कल्याण हुआ हो! इन 10 सालों आम मेहनतकश जनता केवल तबाहो-बरबाद हुई है, जिसके बदले में उसे 5 किलो राशन की ख़ैरात

(पेज 7 पर जारी)

मज़दूरों-मेहनतकशों को इस साम्प्रदायिक साज़िश को सिरे से नकारना होगा वरना आने वाले साल उनके लिए विनाशकारी होंगे !

(पेज 7 से आगे)

देकर और धर्म की अफ़ीम चटाकर चुप कराया जा रहा है।

2014 के लोकसभा चुनाव के दौरान नरेन्द्र मोदी-नीत भाजपा ने जो नारे दिये थे, वे अब मज़ाक बन चुके हैं। **क्या आपने कभी सोचा है कि भाजपा अब कभी 'अच्छे दिनों' का नाम तक क्यों नहीं लेती? क्या आपने सोचा है कि नरेन्द्र मोदी अब कभी नोटबन्दी का ज़िक्र तक क्यों नहीं करते? वैसे तो भाजपा हर धार्मिक घटना की वर्षगाँठ मनाती है! वह नोटबन्दी को लागू किये जाने की वर्षगाँठ क्यों नहीं मनाती? वह जीएसटी को लागू किये जाने की वर्षगाँठ क्यों नहीं मनाती?**

क्या आपने कभी सोचा है कि अगर नरेन्द्र मोदी की सरकार पिछले 10 वर्षों में इतनी कामयाब थी, तो वह हज़ारों करोड़ रुपये राम मन्दिर के उद्घाटन के प्रचार पर बहाने के बजाय **उन 100 स्मार्ट सिटीज़ के प्रचार पर क्यों नहीं बहाती जो कि मोदी सरकार के दावे के अनुसार बन चुकी हैं? वह हर वर्ष 2 करोड़ रोज़गार देने के अपने वायदे की सफलता का प्रचार क्यों नहीं करती, जो उसने हर चुनाव के पहले किया है? वह पिछले 9 सालों में ग़रीबों के लिए 3 करोड़ मकान बनाये जाने की अपनी उपलब्धि का भी उतने ज़ोर-शोर से प्रचार क्यों नहीं करती? इसलिए क्योंकि ये दावे झूठ हैं!** यह सिर्फ़ हम नहीं कह रहे हैं। जब मोदी सरकार के इन दावों की पड़ताल तथ्य जाँचने वाले कुछ ईमानदार पत्रकारों ने की तो पता चला कि ये कोरे झूठे दावे हैं। यही वजह है कि मोदी सरकार अपनी इन झूठी कथित "उपलब्धियों" का प्रचार करने और उनका जश्न मनाने पर हज़ारों करोड़ रुपये नहीं बहाती है। और ठीक यही वजह है कि महँगाई, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार और मज़दूरों के भयंकर शोषण के सवाल पर बुरी तरह से फेल होने के बाद भाजपा, संघ परिवार और मोदी-शाह सरकार अब रामलला के भरोसे है!

दूसरी ओर, भारत की तमाम बड़ी कम्पनियों और बड़े मालिकान को मोदी सरकार ने जमकर फ़ायदा पहुँचाया है। इसलिए वे अपनी पूँजी की ताक़त मोदी सरकार की सेवा में लगाये हुए हैं। उन्हीं के सारे मीडिया चैनल भी हैं। ज़ाहिर है कि वे मोदी सरकार और बड़े मालिकान व कम्पनियों के हितों के अनुसार ही बकवास करेंगे और कर रहे हैं। बड़े मालिकान व कम्पनियों को मोदी सरकार ने किस प्रकार फ़ायदा पहुँचाया है। **2014-15 से लेकर 2021-22 तक ही मोदी सरकार ने कुल कर आमदनी में कारपोरेट टैक्स (यानी, सबसे धनी पूँजीपतियों द्वारा दिया जाने वाला टैक्स) का हिस्सा लगभग 35 प्रतिशत से घटाकर 24 प्रतिशत कर दिया। यानी 10 प्रतिशत की कटौती। यहाँ तक कि छोटे पूँजीपतियों की कम्पनियों के लिए भी टैक्स को 25 प्रतिशत के बेस से घटाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया।** यही कारण है कि छोटे और मँझोले पूँजीपति बड़ी पूँजी से प्रतिस्पर्द्धा में पिटते भी रहते हैं, लेकिन मोदी सरकार का गुणगान भी करते रहते हैं। कस्टम शुल्क को इसी दौर में 15.1 प्रतिशत से घटाकर 6 प्रतिशत कर दिया गया। ज़ाहिर है, इसका फ़ायदा भी देशी व विदेशी पूँजीपति वर्ग को पहुँचा।

दूसरी ओर, अप्रत्यक्ष करों को बढ़ाकर अभूतपूर्व सीमा तक पहुँचा दिया गया है, जिसका बोझ मुख्य तौर पर आम जनता उठाती है। पेट्रोल व डीज़ल की क़ीमत का लगभग 50 से 60 प्रतिशत तो सरकार को दिया जाने वाला टैक्स है! रसोई गैस की क़ीमत इसी दौ रु. 410 से बढ़कर रु. 1000 के करीब पहुँच चुकी है और कुछ राज्यों में रु. 1000 को पार कर गयी है। यह सब जनता पर लादा जा रहा अप्रत्यक्ष करों का बोझ है। **आप ख़ुद सोचें: पेट्रोल उत्पादों पर कर से 2014 में सरकार की आमदनी थी रु. 99,000 करोड़। और आज यह रु. 4 लाख करोड़ के करीब है! यानी, करीब 300 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी। यह सबकुछ आपकी-हमारी मज़दूरी में से कटौती है, जो पूँजीपति वर्ग सरकार के द्वारा कर रहा है।** यानी, मोदी सरकार पूँजीपतियों को अभूतपूर्व छूट देने से सरकारी ख़ज़ाने में होने वाली कमी को जनता के ऊपर अप्रत्यक्ष करों का बोझ लादकर पूरा कर रही है। **इस मामले में मोदी सरकार का नारा स्पष्ट है: पूँजीपतियों को पूजो, आबाद करो – जनता को लूटो, बरबाद करो! बदले में जनता को मन्दिर-मस्जिद की राजनीति में उलझाकर रखा और धर्म की अफ़ीम चटाते रहो।**

मोदी सरकार इन क्षेत्रों में अपने द्वारा किये गये कारनामों के प्रचार पर पानी की तरह पैसा क्यों नहीं बहा रही है? वह इसका प्रचार क्यों नहीं कर रही है कि नोटबन्दी के बाद आतंकवाद और भ्रष्टाचार ख़त्म हो गया? लेकिन फिर बताना पड़ता है कि पुलवामा हमला तो नोटबन्दी के बाद ही हुआ था! साथ ही, भाजपा द्वारा राफ़ेल घोटाला भी नोटबन्दी के एक साल बाद ही हुआ! तो आतंकवाद की कमर तो टूटी नहीं, ऊपर से भाजपा वाले ही भ्रष्टाचार की कीचड़ में नहा रहे हैं! तो फिर मोदी सरकार भला इस "उपलब्धि" का प्रचार कैसे करे?

उसी प्रकार "बहुत हुआ नारी पर वार" के नारे का क्या हुआ? स्त्री-विरोधी अपराध कम करने का मोदी सरकार प्रचार क्यों नहीं करती? इसका जवाब तो हर किसी को पता है। जब सारे भाजपा के नेता-मन्त्री, विधायक, सांसद, पार्षद और स्थानीय छुटभैये स्त्रियों के साथ छेड़छाड़ और बलात्कार के सारे रिकार्ड ध्वस्त कर रहे हों, जब योगी, मोदी, अमित मालवीय के साथ फोटो खिंचवाने वाले भाजपा युवा मोर्चा और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के गुण्डे आये-दिन बलात्कार व हत्या में धरे जा रहे हों और जब हर मिनट एक औरत का बलात्कार किया जा रहा हो, तो मोदी सरकार किस मुँह से स्त्री-विरोधी अपराधों पर काबू करने की बात करेगी? जब बिलकिस बानो के बलात्कारियों और उसके परिवार के हत्यारों को गुजरात सरकार सारे नियम-कायदे ताक पर रखकर रिहा कर रही हो, गुजरात हाईकोर्ट इसमें उसका साथ दे रहा हो, और बाद में सुप्रीम कोर्ट ने पूँजीवाद की लुटती इज्जत बचाने के लिए इन मानवद्रोही हत्यारों को दोबारा जेल में भेजकर गुजरात सरकार को फटकार लगायी हो, तो मोदी सरकार स्त्री-विरोधी अपराधों पर काबू करने का प्रचार कैसे करेगी?

मोदी सरकार का हर वर्ष 2 करोड़ रोज़गार देने का वायदा कहाँ गया? हर वर्ष 2 करोड़ रोज़गार देने के बजाय मोदी सरकार ने अपने 10 वर्षों में नोटबन्दी और अनियोजित लॉकडाउन के ज़रिये और मज़दूरों के शोषण की दर को बढ़ाने में पूँजीपतियों की मदद करके बेरोज़गारी की दर को अभूतपूर्व स्तर पर पहुँचा दिया। इसी दौर में 5 करोड़ से ज़्यादा लोगों ने रोज़गार खोया। निजीकरण की जो आँधी मोदी सरकार ने चला रखी है, वह बेरोज़गारी में हर वर्ष इज़ाफ़ा कर रही है। नौजवानों का आधा हिस्सा बेरोज़गार है। और तो और, सरकारी बेरोज़गारी दर ही 10 प्रतिशत पार कर रही है, जिसके अनुसार, अगर पिछले हफ़्ते किसी व्यक्ति को एक दिन रोज़गार मिला था, तो उसे नौकरीशुदा माना जायेगा! अगर ऐसे मज़ाकिया मानक से भी 10 प्रतिशत काम करने योग्य लोग बेरोज़गार हैं, तो समझा जा सकता है कि रोज़गार के सच्चे मानकों के अनुसार देश में कितने बेरोज़गार होंगे। **कुछ आकलनों के अनुसार, इस समय ऐसे लोग जो रोज़गार ढूँढ रहे हैं और उन्हें रोज़गार नहीं मिल रहा, उनकी तादाद 30 से 32 करोड़ के बीच है।** ज़ाहिरा तौर पर, वे सब हिण्डन पुल से कूदकर आत्महत्या नहीं कर लेते। कोई काम चलाने के लिए पटरी दुकानदारी करता है, कोई रेहड़ी-खोमचा लगाता है, कोई लेबर चौक पर खड़ा होता है, तो कोई सेल्समैनी या गार्ड का काम कर लेता है और इसी तरह से भुखमरी और कुपोषण की रेखा पर किसी तरह से ज़िन्दा रहता है। जब देश में रोज़गार के ऐसे हालात हों तो ज़ाहिर है कि मोदी सरकार नौकरी देने के मामले में सफलता का प्रचार तो कर नहीं सकती!

इसलिए स्पष्ट है कि मोदी सरकार हज़ारों करोड़ रुपये राम मन्दिर के प्रचार पर क्यों बहा रही है और अपनी योजनाओं की सफलता के प्रचार पर क्यों नहीं बहा रही, हालाँकि सफल योजनाओं को जनता उनकी सफलता के कारण ही अपने जीवन के अनुभवों के ज़रिये जानती है, उनके प्रचार की आवश्यकता नहीं होती। **सच्चाई यह है कि जनता की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के मामले में, जो कि सरकार का पहला काम होता है, मोदी सरकार भयंकर तरीके से फ़ेल हुई है। वह रोज़गार, महँगाई कम करने, स्त्री-विरोधी अपराधों को कम करने, नोटबन्दी की सफलता पर, कोरोना के लॉकडाउन की सफलता पर, रसोई गैस सस्ती करने के सवाल पर वोट माँग ही नहीं सकती; जो भाजपा नेता ऐसा करने का प्रयास करेगा, वह जनता के हाथों जूते खायेगा।**

यही कारण है कि भाजपा के पास अपना पुराना तुरुप का पत्ता ही बचा है : साम्प्रदायिकता और धार्मिक जुनून फैलाकर जनता को उसके ही हितों के विपरीत फ़ासीवादी लहर में बहाना, मुसलमानों को दुश्मन के तौर पर दिखाना और "धर्म पर ख़तरे" और "हिन्दू ख़तरे में है" का नकली और काल्पनिक भय पैदा करके, लोगों के वोट बटोरना।

मोदी सरकार व संघ परिवार की रणनीति

ये ही वे कारण है जिनके चलते मोदी सरकार रामभरोसे 2024 में सत्ता में पहुँचने की जुगत भिड़ा रही है। वह आपकी धार्मिक भावनाओं का शोषण कर आप को ही मूर्ख बना रही है। हिटलर ने इसी प्रकार नस्लवाद का इस्तेमाल कर जर्मन जनता को उन्माद में बहाया था और बाद में नतीजा यह हुआ था कि जर्मन जनता का बहुलांश तबाहो-बरबाद हो गया था। **जब तक जर्मनी की जनता का बहुलांश बरबाद नहीं हुआ था तो उसे भी लगता था कि जर्मनी दुनिया का महानतम राष्ट्र, "विश्वगुरु" और न जाने क्या-क्या बन गया था।** मोदी के ही समान जर्मन मीडिया पर भी हिटलर का क़ब्ज़ा था। मीडिया का इस्तेमाल करके झूठ को सच और सच को झूठ बनाने का काम आज मोदी सरकार हिटलर की सरकार से कहीं ज़्यादा कुशलता से कर रही है क्योंकि आज संचार के साधन भी पहले से कहीं ज़्यादा उन्नत हैं और उनकी कहीं ज़्यादा पहुँच है।

मोदी सरकार धर्म का राजनीतिक इस्तेमाल कर रही है। वह अपने आपको "धार्मिक" दिखाती है। इसका यह अर्थ नहीं कि भाजपा के लोग बड़े दूध के धुले, धर्मध्वजाधारी, आदर्शों व नैतिकता के पहरेदार हैं। भाजपा और संघ परिवार के तमाम संगठनों में कैसे संस्कारी लोग भरे हैं, यह तो विशेष तौर पर पिछले 10 सालों में सबको पता चल गया है। **अगर किसी इलाके में यह ख़बर आती है कि वहाँ से भाजपाइयों की रैली या जुलूस निकलने वाला है तो स्त्रियाँ तो वैसे ही घर के भीतर चली जाती हैं। 'बेटी बचाओ' नारे का मतलब जनता को अब समझ में आया है : 'भाजपा से बेटी बचाओ!'** धर्म का चोगा तो भाजपा सिर्फ़ इसलिए ओढ़ती है, क्योंकि जनता के पिछड़े हिस्से आदर्श, नैतिकता, सद्चरित्र, सत्य आदि को धर्म से जोड़कर देखते हैं, हालाँकि इसका कोई ठोस आधार नहीं होता। यह एक विचारधारात्मक यानी कि छलने वाली झूठी छवि है, जो सदियों से शासक वर्गों ने जनता को दिमाग़ी तौर पर ग़ुलाम बनाये रखने के लिए बनायी है और लोक चेतना में उसे बिठाया है।

लेकिन धर्म के क्षेत्र में भी भाजपा महज़ धार्मिक छवि इस्तेमाल करके अपने "चाल-चेहरा-चरित्र" को साफ़ नहीं दिखाना चाहती, बल्कि वह समूची हिन्दू आबादी की एकमात्र प्रवक्ता व प्रतिनिधि बनना चाहती है, ताकि भाजपा का विरोधी होने को ही हिन्दू-विरोधी होना दिखलाया जा सके। इसके एक प्रमाण पर ग़ौर करिये: ***हिन्दू धर्म के भीतर भी जो संस्थान, सन्त, नेता आदि राम मन्दिर के राजनीतिक इस्तेमाल किये जाने का विरोध कर रहे हैं, गोदी मीडिया उन पर चुप्पी साधे हुए है। चार पीठों के शंकराचार्यों ने राम मन्दिर प्राण प्रतिष्ठा का यह कहकर विरोध किया है कि मोदी सरकार अपने चुनावी व राजनीतिक फ़ायदे के लिए एक अधूरे बने मन्दिर का उद्घाटन कर रही है।*** इसके ज़रिये, वह 2024 के लोकसभा चुनावों में, विशेष तौर पर उत्तर भारत की हिन्दी पट्टी में वोट बटोरना चाहती है। लेकिन कोई गोदी मीडिया इन शंकराचार्यों का इण्टरव्यू लेने नहीं जा रहा है।

अब मोदी सरकार यह तो बोल

(पेज 8 पर जारी)

मज़दूरों-मेहनतकशों को इस साम्प्रदायिक साज़िश को सिरे से नकारना होगा वरना आने वाले साल उनके लिए विनाशकारी होंगे!

(पेज 7 से आगे)

नहीं सकती कि ये सारे शंकराचार्य हिन्दू धर्म-विरोधी हैं! कांग्रेस को तो राम मन्दिर उद्घाटन पर न जाने के लिए भाजपा व मोदी सरकार ने तुरन्त ही हिन्दू-विरोधी बता दिया! लेकिन शंकराचार्य को कैसे हिन्दू-विरोधी कहें! इससे तो सारा खेल ही बिगड़ जायेगा! नतीजतन, हिन्दू धर्म के दायरे के भीतर मौजूद ऐसी ताक़तों का भी मोदी सरकार गोदी मीडिया द्वारा ब्लैक-आउट करवा रही है। उसका मकसद साफ़ है: *मोदी को हिन्दू-हृदय सम्राट के रूप में पेश करना और इस बात को एक 'कॉमन सेंस' के रूप में जनता में स्थापित कर देना कि जो मोदी-विरोधी है वह हिन्दू-विरोधी है! मोदी व भाजपा हिन्दू आबादी के अकेले प्रवक्ता और प्रतिनिधि हैं।* धर्म तक पहुँच भी भाजपा और संघ परिवार के ज़रिये और नरेन्द्र मोदी के आशीर्वाद के ज़रिये ही होगी, जिसे कुछ छुटभैये भाजपाई नेता तो विष्णु का नया अवतार भी बताने लगे हैं! मीडिया व संचार तन्त्र पर अपना नियन्त्रण हिटलर के समान ही, या हिटलर से भी बेहतर तरीके से क़ायम करके मोदी सरकार व संघ परिवार अपने इस घटिया मंसूबों को कामयाब बनाने की तरकीबें लगा रहे हैं।

हमारे देश के साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों ने अपने पूर्वजों यानी हिटलर व मुसोलिनी से सीखा है। हमें भी अपने पूर्वजों यानी इन देशों में क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग व मेहनतकश जनता व उनके राजनीतिक नेतृत्व की ग़लतियों से सीखना चाहिए। निश्चित तौर पर, जनता केवल मीडिया से सच को झूठ व झूठ का सच समझती रहे, ऐसा नहीं होता। आज तो जनता का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा गोदी मीडिया की सच्चाई से वाकिफ़ भी हो रहा है। जनता अपने जीवन के हालात से भी सच्चाई को समझती है और कहना चाहिए कि सबसे पहले वह अपने जीवन के अनुभवों से सच्चाई की पड़ताल करती है। किसी भूखे को टेलीविज़न कितना भी बताता रहे कि उसका पेट भरा है, वह नहीं मानेगा। किसी बेरोज़गार को गोदी मीडिया कितना भी बताता रहे कि वह नौकरीशुदा है, या वह नौकरी न ढूँढ़े बल्कि खुद ही कोई धन्धा कर ले, तो वह सहमत होगा क्या? आम तौर पर, नहीं होगा।

लेकिन केवल इतने से ही जनसमुदायों का बड़ा हिस्सा फ़ासीवाद के विरोध में नहीं खड़ा हो सकता कि वह फ़ासीवादी प्रचार की सच्चाई को कमोबेश समझने लगे। उसे राजनीतिक नेतृत्व की ज़रूरत होती है, जो अपनी हिरावल पार्टी की अगुवाई में केवल और केवल सर्वहारा वर्ग ही दे सकता है। केवल ऐसी ताक़त के नेतृत्व में आम मेहनतकश जनता एक विकल्प देख पाती है, उस विकल्प को अपना पाती है, अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की बुनियादी ज़रूरतों जैसे भोजन, आवास, रोज़गार, शिक्षा व चिकित्सा के लिए सड़कों पर उतर पाती है, सरकार को घेर पाती है। कुछ क्रान्तिकारी जनसमुदायों को यह विकल्प देने के जटिल और दुरूह संघर्ष से तो भाग खड़े होते हैं और फिर जनता को ही गाली देते हैं कि वह मोदी सरकार के ख़िलाफ़ उठ क्यों नहीं खड़ी होती! **सर्वहारा वर्ग का नज़रिया साफ़ है : जब तक जनता के सामने एक ठोस राजनीतिक नेतृत्व, एक ठोस राजनीतिक कार्यक्रम और एक ठोस राजनीतिक विकल्प नहीं होगा, तब तक जनता जुआ नहीं खेलती।**

फ़ासीवादी चुनौती का जवाब कैसे दें?

आज का सबसे बड़ा तात्कालिक कार्यभार यह है : जनता के असल मुद्दों, यानी बेरोज़गारी, महँगाई, आवास, शिक्षा, चिकित्सा, भ्रष्टाचार व साम्प्रदायिकता के मसले पर ठोस माँगों व ठोस कार्यक्रम के साथ व्यापक मेहनतकश जनता को जागरूक, गोलबन्द और संगठित किया जाये; उसे साम्प्रदायिक फ़ासीवादी मोदी सरकार की असलियत से वाकिफ़ कराया जाये; उसे सच्चे सेक्युलरिज़्म के उसूलों से वाकिफ़ कराया जाये; उसे बताया जाये कि मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए सबसे सही और सटीक बात है कि धर्म को वे पूर्णत: निजी मामला घोषित कर दें और मालिकों की किसी भी पार्टी को अपनी धार्मिक भावनाओं का शोषण न करने दें। याद रखें कि **शहीदे-आज़म भगतसिंह** ने फाँसी चढ़ने से पहले देश के मेहनतकशों को क्या सन्देश दिया था। भगतसिंह ने देश के मज़दूरों व ग़रीब किसानों से कहा था : **हम धर्म के मामले में अलग होकर भी अपनी राजनीति में एक हो सकते हैं और हमें होना ही होगा। इसके बिना हम मालिकों के जमात के हाथों धोखा खाते रहेंगे, लुटते रहेंगे और कुचले जाते रहेंगे।** आज हमें अपने असल मुद्दों पर एक जुझारू जनान्दोलन खड़ा कर फ़ासीवादी, जनविरोधी, मज़दूर-विरोधी, ग़रीब किसानों की विरोधी, स्त्री-विरोधी, दलित-विरोधी व आदिवासी-विरोधी मोदी सरकार को घेरना होगा, कठघरे में खड़ा करना होगा और उसकी व संघ परिवार की साम्प्रदायिक राजनीति को सिरे से नकार देना होगा। **यह सबसे पहला तात्कालिक कार्यभार है।**

इसके साथ ही आज देश में मेहनतकशों के संघर्षों को एक लड़ी में पिरोने और उन्हें सूझबूझ के साथ नेतृत्व देने के लिए **एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी को खड़ा करने, उससे जुड़ने और उसे मज़बूत करने की ज़रूरत है।** जिस प्रकार के देशव्यापी क्रान्तिकारी जनान्दोलन को खड़ा करने की आज ज़रूरत है, वह एक क्रान्तिकारी राजनीतिक नेतृत्व के बिना बहुत लम्बा सफ़र नहीं तय कर पायेगा। जिन आन्दोलनों के पास एक सूझबूझ वाला राजनीतिक नेतृत्व, एक ठोस राजनीतिक कार्यक्रम और एक स्पष्ट राजनीतिक विकल्प नहीं होता, वे कालान्तर में बिखर जाने के लिए अभिशप्त होते हैं। इसलिए मज़दूरों, मेहनतकशों, ग़रीब किसानों और निम्न व मँझोले मध्यवर्ग की नुमाइन्दगी करने वाली एक देशव्यापी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी को खड़ा करने का काम हमें आज ही से शुरू करना होगा। यह तात्कालिक कार्यभार भी है और दूरगामी कार्यभार भी।

इसके अलावा, आज हरेक मज़दूर-मेहनतकश को कुछ बातें समझ लेने की ज़रूरत है, जो ये हैं :

मोदी सरकार और उसके नेता-मन्त्री जो भी बोलें, आम तौर पर, उसके उल्टे को आप सच मान सकते हैं।

व्हाट्एप आदि के ज़रिये स्थानीय व केन्द्रीय संघ परिवार के ग्रुप झूठा साम्प्रदायिक प्रचार करते रहते हैं। एक नियम बना लें कि हिन्दू-मुसलमान, मन्दिर-मस्जिद आदि की बात करने वाला हर व्हाट्सएप मैसेज आपकी दुश्मन जमात, यानी मालिकों, ठेकेदारों व धनपशुओं के जमात द्वारा आपको बाँटने और फिर आप पर राज करने की साज़िश का हिस्सा है। ऐसे ग्रुपों को छोड़ दें व ब्लॉक कर दें जो साम्प्रदायिक प्रचार व धार्मिक उन्माद फैलाते हैं।

गोदी मीडिया जो भी बोले, आम तौर पर, उसके उल्टे को आप सच मानें। यह आज हमारे लिए एक बेहद कारगर नियम हो सकता है।

तथ्यों व सच्चाइयों की पड़ताल अपने जीवन के ठोस अनुभवों को अपने मज़दूर-मेहनतकश भाइयों-बहनों में साझा करके करें।

वैकल्पिक मीडिया, जो आम तौर पर टेलीविज़न पर नहीं, बल्कि यूट्यूब, सोशल मीडिया आदि पर उपलब्ध है, उसके ज़रिये सच्चाइयों की जाँच-पड़ताल करें। ज़ाहिर है कि यूट्यूब व सोशल मीडिया आदि पर फ़ासीवादी कचरा भी बहुत है। ऐसे में, आपको पहचान करनी होगी कि ईमानदार पत्रकारिता की नुमाइन्दगी करने वाले पत्रकार कौन हैं और उनके कार्यक्रमों को कहाँ देखा जा सकता है। ऐसे कुछ पत्रकारों में रवीश कुमार और कुछ अन्य स्वतंत्र यूट्यूब चैनल शामिल हैं। उनके विचारों व राजनीति से हम निश्चय ही असहमति रख सकते हैं और उनके उदार बुर्जुआ पूर्वाग्रहों की आलोचना कर सकते हैं, लेकिन यह मान सकते हैं कि वे पत्रकारिता के उन बुनियादी उसूलों का काफ़ी हद तक पालन करते हैं जिसके अनुसार मीडिया का काम जनपक्षधर सच्चाई को दिखाना और पूँजीवादी सत्ता से प्रश्न करना होता है।

रोज़गार-गारण्टी, आवास-गारण्टी, प्राथमिक से उच्चतर स्तर तक सभी को समान व निशुल्क शिक्षा, सभी को समान व निःशुल्क अच्छे दवा-इलाज की गारण्टी और एक सच्चे मायने में सेक्युलर राज्य की गारण्टी की पाँच माँगों को अपनी बुनियादी माँग बना लें और इस पर अड़ जायें, लड़ जायें, गोलबन्द व संगठित हो जायें।

आने वाले चुनावों में जो भी धर्म या जाति का, मन्दिर-मस्जिद का, हिन्दू-मुसलमान का ज़िक्र भी करे, उसका बहिष्कार करें, उसे अपनी चौखट से 'सेवा-सत्कार' कर रुख़सत करें। उससे पूछें कि वह रोज़गार गारण्टी क़ानून बनाने का लिखित वायदा करने को तैयार है या नहीं? वह अप्रत्यक्ष करों को समाप्त करने का लिखित वायदा करने को तैयार है या नहीं? वह साम्प्रदायिकता के ख़िलाफ़ एक सख़्त क़ानून लाने की लिखित गारण्टी देने को तैयार है या नहीं? वह अपनी पार्टी को चन्दा या चुनावी बॉण्ड के तहत धन देने वाले हरेक व्यक्ति की पहचान और अपने फ़ण्ड का पूरा हिसाब जनता के सामने खोलने को तैयार है या नहीं?

ईवीएम मशीनों पर कतई भरोसा नहीं किया जा सकता है, यह बात अब साफ़ हो चुकी है। दुनिया के तमाम उन्नत देश भी ईवीएम से वापस बैलट पेपर चुनावों पर जा चुके हैं। सिर्फ़ यह बात कि मोदी सरकार और उसके इशारों पर काम कर रहा चुनाव आयोग ईवीएम को हटाने की बात आते ही ऐसी उछल-कूद मचाने लगता है मानो किसी संवेदनशील स्थान पर मिर्च लग गयी हो, इस बात को साफ़ कर देती है कि ईवीएम अविश्वस्नीय है। और बैलट पेपर पर जाने के लिए जो ख़र्च है, वह सरकार निश्चित ही कर सकती है क्योंकि यहाँ प्रश्न चुनाव की प्रक्रिया पर जनता के भरोसे का है। विभिन्न विपक्षी पार्टियाँ इस सवाल पर मज़बूती से स्टैण्ड लेने का दमखम और साहस नहीं रखतीं। इस प्रश्न पर एक जनान्दोलन की ज़रूरत है।

हमें हर हालत में धर्म को एक पूर्णत: व्यक्तिगत मसला मानना चाहिए। शहीदे-आज़म भगतसिंह ने भविष्यवाणी की थी कि साम्प्रदायिकता व धार्मिक उन्माद का ज़हर आने वाली पीढ़ियों की कमर तोड़कर रख देगा, अगर सच्चे सेक्युलरिज़्म को हमने नहीं अपनाया। यानी, हमें अपना एक बुनियादी उसूल बना लेना चाहिए कि हम हर ऐसी ताक़त का राजनीतिक बहिष्कार करेंगे जो धर्म, धार्मिक सम्प्रदाय आदि को राजनीति व सामाजिक जीवन में लाती है, चाहे वह भाजपा हो या फिर ओवैसी जैसे इस्लामिक कट्टरपंथी।

राम मन्दिर "प्राण-प्रतिष्ठा" के नाम पर फैलाये जा रहे उन्माद में बहने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं है। जो मेहनतकश मन्दिर-मस्जिद के उन्माद में बहा, वह और उसकी आने वाली कई पुश्तें आर्थिक और सामाजिक तौर पर इसकी भारी क़ीमत चुकायेंगी। वास्तव में, क्या हम पहले इस धार्मिक उन्माद में बहने की क़ीमत आज नहीं चुका रहे हैं? 1986, 1992, 2002 में हमारे बहुत-से भाई-बहन धर्म के उन्माद में बहे थे। अब अपने आपसे पूछिये कि इससे पिछले 40, 30 या 20 सालों में आपकी ज़िन्दगी के हालात बेहतर हुए या बदतर हुए। कोई भी व्यक्ति आपको बता देगा कि विशेष तौर 1986 से जो साम्प्रदायिक फ़ासीवादी आन्दोलन धीरे-धीरे सत्ता पर अपनी चढ़ाई करने में कामयाब हुआ, उससे हरेक मज़दूर-मेहनतकश की जिन्दगी बदतर हुई है क्योंकि इस फ़ासीवादी आन्दोलन का असली चरित्र ही यह है कि यह दुकानदारों, कारखानेदारों, ठेकेदारों, दलालों का आन्दोलन है, जिसके पीछे असुरक्षा से ग्रस्त व अन्धी प्रतिक्रिया से त्रस्त एक टुटपुँजिया आबादी चलती है। लेकिन यह आन्दोलन विशेष तौर पर सबसे बड़े पूँजीपतियों और आम तौर पर पूँजीपति वर्ग के हितों की सेवा करता है। यही तो वजह है कि तमाम दुकानदार, कारखानेदार, ठेकेदार, दलाल, बिचौलिये, प्रापर्टी डीलर, शेयर सटोरिये भाजपा के समर्थक होते हैं। कभी-कभी किसी आन्दोलन व पार्टी का चरित्र केवल इस बात से समझ लेना चाहिए कि उसे पैसे कौन देता है! यह बात हर मज़दूर-मेहनतकश को गाँठ बाँध लेनी होगी कि धर्म को पूरी तरह से निजी मसला मानेंगे और धार्मिक उन्माद में नहीं बनेंगे, चाहे कोई राम, लक्ष्मण, सीता, कृष्ण, शिव-शंकर का कितना भी नाम क्यों न ले। आज अगर हम इस बात को नहीं समझेंगे तो कल बहुत देर हो जायेगी।

'मज़दूर बिगुल' आपका आह्वान करता है कि मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी के लिए ज़रूरी उपरोक्त कार्यभारों को पूरा करने के लिए जागरूक हों, गोलबन्द हों व संगठित हों। आपके ज़ेहन में इन्हें लेकर कोई सवाल है, तो हमें लिखें, हमसे सम्पर्क करें। 'मज़दूर बिगुल' स्वयं इस मुहिम में शामिल है। जनता का जुझारू क्रान्तिकारी जनान्दोलन ही फ़ासीवाद को शिकस्त दे सकता है। उसकी शुरुआत करने का वक़्त आ चुका है।

आज़ादी की आदिम चाहत, अदम्य साहस और ज़िन्दगी की ललक का नाम है गाज़ा!

अजेय है गाज़ा!!

तय है ज़ायनवादी सेटलर इज़रायल का पीछे हटना!!

गाज़ा के मुक्तियोद्धाओं के हाथों इज़रायली हत्यारों की लगातार हार जारी है!

● लता

फ़िलिस्तीन की जनता के अदम्य साहस ने एक बार फिर सेटलर उपनिवेशवादी ज़ायनवादी इज़रायल को हारने के लिए मजबूर कर दिया है। हत्यारे इज़रायली प्रधानमंत्री नेतन्याहू की सरकार चाहे कितने दावे कर ले गाज़ा में इज़रायल की हताशा स्पष्ट नज़र आने लगी है। हमास को जड़-मूल से समाप्त करने के प्रण और दावों के बीच इज़रायली सेना के भीतर से यह बात निकलकर सामने आने लगी है कि हमास को ख़त्म नहीं किया जा सकता है। इज़रायल द्वारा दबी आवाज़ में हार की यह स्वीकारोक्ति है। **इज़रायली सेना के पूर्व अध्यक्ष यारी गोलन** ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि **"हमास की सत्ता को समाप्त नहीं किया जा सकता है, कम से कम निकट भविष्य में तो नहीं!"**

उत्तरी गाज़ा पर नियंत्रण के तमाम दावों के बीच इज़रायली सेना को उत्तर गाज़ा में सख़्त प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है। हमास यहाँ से से रॉकेट हमले भी जारी रखे है। एक तरफ़ है इज़रायल का उत्तर गाज़ा पर नियंत्रण का दावा और दूसरी तरफ़ मृत और घायल इज़रायली सैनिकों की बढ़ती संख्या। हालाँकि इज़रायल इस संख्या को छुपाने की तमाम कोशिशें कर रहा है इसके बावजूद जो संख्या आ रही है वह कुछ अलग दास्तान बयान कर रही है। इज़रायली अखबार *येदीओथ अहरोनोथा* के अनुसार इज़रायल के विभिन्न अस्पतालों में 5000 से अधिक घायल सैनिक भर्ती किये गये हैं। इनमें से 58 प्रतिशत गम्भीर रूप से घायल हैं जिनमें से कई इस क़दर घायल हैं कि उनके हाथ-पाँव काटने की ज़रूरत पड़ रही है। स्वतन्त्र रिपोर्टों के अनुसार, हताहत इज़रायली सैनिकों की वास्तविक संख्या 12,000 से ऊपर है। इज़रायली सेना ने ही माना है कि उसके करीब 200 सैनिक गाज़ा में मारे जा चुके हैं, लेकिन निष्पक्ष प्रेक्षकों के अनुसार यह संख्या 2000 के ऊपर हो सकती है। 16 जनवरी को इज़रायल को अपने सेना की एक पूरी डिवीज़न गाज़ा से बुलाकर वेस्ट बैंक में लगानी पड़ी। इसके पहले, उसकी ख़ास व बेहद प्रशिक्षित गोलानी ब्रिगेड भी गाज़ा में पिटकर भाग चुकी थी। यह दिखाता है कि जब जनता आज़ादी के लिए लड़ती है, हथियारों के बड़े से बड़े ज़खीरे उसके सामने बेकार हो जाते हैं। अपने तमाम आधुनिक सैन्य बल और दुनिया के साम्राज्यवादी शक्तियों के समर्थन के बावजूद इज़रायल को गाज़ा में मुँह की खानी पड़ रही है।

अपनी हार को देखते हुए हताशा में ज़ायनवादी, उपनिवेशवादी नेतन्याहू सरकार ने मासूम बच्चों और गाज़ा के नागरिकों पर हमले को और तेज़ कर दिया है। अपनी पराजय को छुपाने के लिए नेतन्याहू इज़रायल की जनता के सामने गाज़ा के नरसंहार और विनाश को विजय की तरह प्रस्तुत कर रहा है। लेकिन साथ ही वह इस सच्चाई को छुपा नहीं पा रहा कि 100 दिनों से अधिक से चल रहे नरसंहार के बाद भी अभी तक इज़रायली बन्धकों को रिहा क्यों नहीं कराया जा सका है? पूरे उत्तर गाज़ा पर नियंत्रण और दक्षिण गाज़ा पर सघन बमबारी और ज़मीनी हमलों के बाद भी इज़रायल को बन्धक क्यों नहीं मिल रहे हैं? हमास अभी भी किस तरह गाज़ा में शासन कर रहा है और किस प्रकार इज़रायली सेना को खदेड़ रहा है यदि उसके तमाम बड़े नेताओं को समाप्त करने का दावा इज़रायल कर रहा है?

स्पष्ट है कि हत्यारे नेतन्याहू ने जितने दावे किये उनमें से एक भी पूरा नहीं होता दिख रहा है। नेतन्याहू सरकार ने अपनी जनता को जीत का अहसास दिलाने के लिए गाज़ा के साथ-साथ वेस्ट बैंक पर भी हमले बढ़ा दिये हैं। इसके अलावा कभी लेबनान में हिज़बुल्लाह पर हमले कर रहा है तो कभी ईरान को छेड़ रहा है, ताकि अमेरिकी व यूरोपीय साम्राज्यवाद को मध्यपूर्व में किसी बड़े युद्ध में खींचा जा सके। निश्चित ही, गाज़ा में इज़रायल की हार स्पष्ट दिख रही है। गाज़ा की जनता बहादुरी से लड़ रही है मगर इज़रायल हार को देखते हुए गाज़ा को खून के दलदल में डुबाने की कोशिश कर रहा है। लेकिन उसकी हर कोशिश दुनिया में इज़रायल के अस्तित्व को मुश्किल बना रही है। सभी साम्राज्यवादी देशों में इज़रायल का विरोध अपने चरम पर है, जनता सड़कों पर है और साम्राज्यवादी देशों की सरकारें भी इज़रायल को जारी समर्थन को लेकर मुश्किल में फँसती जा रही हैं।

गाज़ा की वर्तमान स्थिति

इस लेख को लिखे जाने तक गाज़ा में युद्ध के 100 से अधिक दिन हो चुके हैं, 24,190 फ़िलिस्तीनियों का नरसंहार हो चुका है जिनमें से 10,000 बच्चे हैं और 7000 औरतें हैं। घायलों की संख्या 60,317 है और 8000 लापता हैं। वहीं वेस्ट बैंक में अभी तक 347 लोग मारे जा चुके हैं जिनमें से 92 बच्चे हैं। यहाँ घायलों की संख्या 4000 से ऊपर है। गाज़ा के दो-तिहाई से अधिक रिहायशी घर तबाह हो चुके हैं, 370 स्कूल-कॉलेज बर्बाद हो गये हैं और 35 में से 30 अस्पताल इज़रायल ने बम से उड़ा दिये हैं। इज़रायल ख़ासकर डॉक्टरों, अस्पताल के कर्मचारियों और पत्रकारों को अपना निशान बना रहा है। वेस्ट बैंक में सड़कों पर बच्चों को गोलियाँ मारी जा रही है और हमास के नेताओं की खोज के नाम पर वेस्ट बैंक के तमाम शरणार्थी शिविरों में नौजवानों पर हमले हो रहे हैं उन्हें मौत के घाट उतार जा रहा है। गाज़ा में ही बड़ी आबादी का विस्थापन हुआ है। आज गाज़ा की आबादी सड़कों पर रह रही है जहाँ न पानी की सुविधा है न ही खाने का इन्तज़ाम, साफ़-सफ़ाई शौचालय तो दूर की बात है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार यदि स्थिति इसी तरह बनी रही तो फ़रवरी महीने तक गाज़ा भयंकर अकाल का शिकार हो जायेगा। इज़रायल न केवल नरसंहार कर रहा है बल्कि तमाम सीमा क्षेत्रों पर पाबन्दी लगाकर जीवन के लिए सभी मूलभूत वस्तुओं और सुविधाओं जैसे दवाइयाँ, चिकित्सा उपकरण, भोजन, पानी आदि को गाज़ा में प्रवेश करने देने में कठिनाई पैदा कर रहा है।

उधर हमास के हमलों में इज़रायल में मरने वालों की संख्या पहले 1,405 बतायी जा रही थी जिसे बदल कर 1,139 कर दिया गया है। घायलों की संख्या 8,730 है। अक्सर इज़रायली आँकड़ों में फेरबदल होती रहती है। वजह साफ़ है विजय की घोषणाओं के बीच बढ़ते आँकड़े इज़रायल की हार की सच्चाई बयान कर रहे हैं और यह भी दिखला रहे हैं कि इज़रायली नस्लवादी फ़ासीवादी लफ़्फ़ाज़, धोखेबाज़ और झूठे हैं। उनके दर्जनों दावों का झूठ इस दौरान पकड़ा गया है।

गाज़ा की जनता का संघर्ष

1948 के बाद अब तक के सबसे गम्भीर इज़रायली हमले का सामना फ़िलिस्तीन और गाज़ा की जनता कर रही है। इज़रायल ने पूरे गाज़ा पट्टी को खुली जेल में तब्दील कर दिया था। यहाँ से कोई कहीं जा नहीं सकता था और बाहर का कोई व्यक्ति यहाँ आ नहीं सकता था। एक लम्बी फ़ेहरिस्त है सामानों की जिसके प्रवेश पर इज़रायल ने प्रतिबंध लगाया हुआ है। 2008 से गाज़ा में ईंधन जैसे पेट्रोल और डीज़ल पर इज़रायल ने प्रतिबन्ध लगाया हुआ है, बिजली मात्र 4 से 6 घण्टे के लिए रहती है। रोज़मर्रा के समान जैसे पास्ता, शादी के पोशाक, बच्चों की किताबें, चॉकलेट, जैम, डब्बाबन्द फल, फलों के जूस आदि गाज़ा में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। गाज़ा की जनता में जीवन के प्रति और अपने हक़ के लिए जो जीवटता है और आज़ादी की आदिम चाहत उसने उन्हें लड़ाकू बनाया है।

वैसे तो इस क्षेत्र में सुरंगों का इतिहास बेहद पुराना है लेकिन 1980-90 के दशक गाज़ा की जनता सुरंग बनाकर इज़रायल के प्रतिबन्ध को तोड़ती रही है। लेकिन 2008-09 के बाद से इज़रायल के प्रतिदिन बढ़ते प्रतिबन्धों को देखते गाज़ा में सुरंगों का एक पूरा सघन जाल बिछाया गया है। निश्चित ही इसमें हमास की नेतृत्वकारी भूमिका है लेकिन गाज़ा की जनता पहले से सुरंग बनाकर इस खुली जेल को तोड़ती रही है। सुरंगों का यह जाल जिसे गाज़ा के लोग 'गाज़ा अण्डरग्राउण्ड मेट्रो' कहते हैं गाज़ा की जीवन रेखा बन गयी है। इन सुरंगों से होकर न केवल रोजमर्रा के सामान, चिकित्सा उपकरण, दवाइयाँ गाज़ा पहुँचती है बल्कि युद्ध के उपकरण, हथियार और सुरक्षा उपकरण भी गाज़ा में लाये जाते हैं। गाज़ा की जनता ज़िन्दगी जीना और लड़ना जानती है इसलिए जीने और लड़ने के रास्ते भी निकाल लेती है। प्रत्येक युद्ध के दौरान इज़रायल इन सुरंगों के विनाश का दावा करता है लेकिन हर साल इन सुरंगों की संख्या व लम्बाई बढ़ती जा रही है। कई अखबारों के अनुसार कुछ सुरंगें तो इज़रायल भी जाती हैं। इज़रायल जमीन के ऊपर और ज़मीन के नीचे भी गाज़ा की जनता से खौफ़ज़दा है। ये 'मेट्रो' गाज़ा की जीवन रेखा है और इस जीवन रेखा के निर्माता भी स्वयं गाज़ा की जनता है।

हमने ऊपर लिखा है कि किस तरह रक्तपिपासु नेतन्याहू की सरकार इज़रायलियों से किये तमाम वायदों को पूरा करने में नाकाम रही है और लम्बे समय से जनप्रतिरोध का सामना कर रही है। इज़रायल की जनता युद्ध के गलत प्रबन्धन का आरोप नेतन्याहू पर लगा रही है। कइयों की माँग है कि युद्ध को विराम दिया जाये और बन्धकों को वापस लाया जाये। लेकिन इज़रायल की जनता के बहुलांश के चरित्र को समझना ज़रूरी है। यह सेटलर उपनिवेशवादी आबादी है, जिसका एक छोटा-सा हिस्सा नस्लभेद व इज़रायली शासक वर्ग के धुर दक्षिणपंथ का विरोध करता है। इसका बड़ा हिस्सा फ़िलिस्तीन के सवाल पर नर्म या गर्म नस्लवादी कट्टरपंथ का हामी है और अरब जनता के प्रति और विशेष तौर पर फ़िलिस्तीनी जनता के प्रति नस्लवादी नफ़रत से भरा हुआ है। शान्ति की स्थापना इज़रायल के अन्त और एक सेक्युलर फ़िलिस्तीनी राज्य की स्थापना के साथ ही सम्भव है, जहाँ मूल अरब मुस्लिम, अरब ईसाई, अरब यहूदी, ग़ैर-ज़ायनवादी यहूदी व अन्य समुदायों के लोग बराबर जनवादी हक़ों के साथ रहें।

इज़रायल ने उम्मीद की थी कि इतनी भयानक बमबारी और सैन्य हमलों के बाद जनता के बीच हमास का प्राधिकार ख़त्म हो जायेगा और हमास ख़त्म हो

(पेज 10 पर जारी)

गाज़ा के मुक्तियोद्धाओं के हाथों इज़रायली हत्यारों की लगातार हार जारी है!

(पेज 9 से आगे)

जायेगा। इसके अलावा गाज़ा पर अपना प्रभाव बढ़ाने या गाज़ा को वेस्ट बैंक की तरह अपने नियंत्रण में करने में वह कामयाब हो जायेगा। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हो सका। सालों से कैद, मुफ़लिसी, अपमान और ज़िल्लत की ज़िन्दगी जीने वाली गाज़ा की जनता ने 7 अक्टूबर को ऐलान कर दिया अब ऐसा और नहीं चलेगा! इज़रायल की घेरेबन्दी को तोड़कर उसने आज़ादी का परचम लहराया। ऐसा नहीं था कि गाज़ा की जनता को इस बात का अनुमान नहीं था की प्रतिरोध में इज़रायल क्या करने जा रहा है। ऐसा लग रहा है कि गाज़ा की जनता भी आर-या-पार की लड़ाई के लिए तैयार थी। यही वजह है कि आज इतनी मौत और विनाश के बाद भी गाज़ा की जनता डटी हुई है और इज़रायल को हार स्वीकार करनी पड़ रही है। जनता अपनी आज़ादी और जीने के अधिकार के लिए किसी भी हद तक लड़ने को तैयार होती है, यह बात गाज़ा की जनता ने साबित कर दिया है। इज़रायल को भी हर बीत रहे दिन के साथ इस बात का अहसास हो रहा है और वह बौखलाहट में गाज़ा पर और वेस्ट बैंक पर अपने हमले तेज़ करता जा रहा है। इज़रायल हर कुछ दिन पर हमास के किसी बड़े नेता को मार गिराने का दावा करता है लेकिन हमास का नेतृत्व अभी भी गाज़ा पर बना हुआ है।

इसकी वजह है गाज़ा की जनता के बीच से उनके बेटे-बेटियों का हमास में शामिल होना। हमास पर हम पहले भी लिख चुके हैं और यहाँ भी यह बात देना चाहते हैं कि निश्चित ही हमास की शुरुआत एक कट्टरपंथी इस्लामी संगठन की तरह हुई थी और आज भी उसका चरित्र कट्टरपंथी ही है लेकिन आज का हमास वही पुराना हमास नहीं है। गाज़ा की जनता ने हमास को बदलने, उसके कट्टरपंथ को कमज़ोर करने का काम किया है। यह दीगर बात है कि हमास ने इस प्रक्रिया में 'दो-राज्य' समाधान को भी स्वीकार कर लिया जो कि समझौतापरस्ती है। अगर दो-राज्य समाधान सम्भव होता तो वह अब तक हो चुका होता। अब तो इज़रायल इसे खुलेआम नकारता है। लेकिन, फ़िलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष ने और हमास में गाज़ा के आम घरों से हो रही भर्तियों ने हमास का चरित्र बदल है।

इसके अलावा गाज़ा में संघर्ष कर रही शक्तियों में सिर्फ़ हमास नहीं है। निश्चित ही हमास सबसे बड़ी ताक़त है लेकिन हमास के अलावा कई इस्लामी जिहादी संगठन और लेफ़्ट शक्तियाँ हैं जो जनता के साथ मिलकर संघर्ष कर रही हैं। यह सच है कि ये शक्तियाँ इतनी नहीं है कि किसी चर्चा का हिस्सा बन सकें लेकिन गाज़ा में इनकी मौजूदगी है। विशेष तौर पर, पिछले दिनों में वामपंथी पी.एफ.एल.पी. (फिलिस्तीन का जनमुक्ति मोर्चा) अपनी ताक़त को कुछ बढ़ाने में सफल हुआ है और उसके योद्धा भी बेहद जुझारू तरीके से इज़रायली हत्यारों से लड़ रहे हैं।

बहरहाल, आज इज़रायल के सारे दावे झूठे साबित हो रहे हैं और नेतन्याहू की सरकार जो युद्ध के पहले भी भ्रष्टाचार और आर्थिक संकट के आरोपों से जूझ रही थी आज युद्ध में मिल रही नाकामी के कारण कहीं अधिक बदनाम और अलोकप्रिय हो रही है। इस समय इज़रायल में युद्ध को विराम देने की माँग उठने के बाद भी इसे जारी रखना नेतन्याहू की मजबूरी है।

अरब विश्व और गाज़ा का संघर्ष

फ़िलिस्तीन की जनता और फ़िलिस्तीन का मसला अरब जनता के लिए सबसे महत्वपूर्ण मसला है यह बात हाल ही में हुए 'ओपीनियन पोल' (रायशुमारी) में एक बार फिर साफ़ हो गयी है। विभिन्न अरब देशों की जनता आज विशाल संख्या में सड़कों पर उतरकर गाज़ा और वेस्ट बैंक पर हो रहे हमलों का प्रतिरोध कर रही है और अपने-अपने हुक्मरानों पर दबाव बना रही है। इस दबाव का ही असर है कि बेमन से ही सही लेकिन इज़रायल के विरोध में अरब देशों के हुक्मरानों को कुछ प्रतीकात्मक प्रतिबन्ध और कुछ प्रतीकात्मक बयान जारी करने पड़ रहे हैं।

इस क्षेत्र में ईरान की भी अपनी क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाएँ हैं। वह चीन और रूस के साथ मिलकर इस क्षेत्र में अमेरिका के प्रभाव को कम करते हुए अपनी शक्ति को बढ़ाना चाहता है। अभी बेहद कुशलता से ज़ुबानी जमाखर्च करते हुए ईरानी शासक हर दिन बयान जारी कर रहे हैं कि वह बेहद क़रीबी से परिस्थितियों पर नज़र रखे हैं। निश्चित ही सम्भव है कि ईरान गाज़ा को युद्ध में हथियार मुहैया कराने और अन्य मदद कर रहा हो, लेकिन वहाँ की जनता समझ रही है कि यह हर दिन मर रहे बच्चों और भूख व जीवन की सुविधाओं से वंचित गाज़ा की आबादी के लिए पर्याप्त नहीं है। ईरान की जनता के बीच भी असन्तोष बढ़ रहा है। वहीं, दूसरी तरफ़ लेबनान में हिज़बुल्ला भी हमास को खुला समर्थन दे रहा है, हालाँकि वह फ़िलहाल अपने हमलों को कुछ तेज़ करते हुए भी इज़रायल से पूर्ण युद्ध शुरू करने से बच रहा है। याद रहे कि यह वही हिज़बुल्ला है जिसने 2006 में इज़रायली सैन्य ताकत को धूल चटायी थी। बेशक, मध्य-पूर्व में ईरानी धार्मिक कट्टरपंथी सत्ता की धुरी के गाज़ा व हमास के सीमित व विनियमित समर्थन के पीछे उनके अपने मंसूबे व हित हो सकते हैं, लेकिन फिलहाल, वस्तुगत तौर पर उसकी भूमिका कुल मिलाकर सकारात्मक बन रही है, क्योंकि यह मध्य-पूर्व में साम्राज्यवाद के संकट को बढ़ा रहा है।

अरब विश्व की जनता अरब शासकों के प्रतीकात्मक बयानों को समझती है। फ़िलिस्तीन का मुद्दा लम्बे समय से अरब विश्व की गाँठ बना हुआ है। सतह के नीचे घोर असन्तोष सुलग रहा है और यह कभी भी फूट सकता है। लेकिन किसी भी क्रान्तिकारी, प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक नेतृत्व के अभाव में ऐसा असन्तोष किसी न किसी प्रतिक्रियावादी, कट्टरपंथी ताकत को स्थापित करेगा जैसाकि 'अरब स्प्रिंग' के दौरान हुआ। फ़िलिस्तीन का संघर्ष अकेला मसला है जो पूरे अरब विश्व के क्रान्तिकारी परिवर्तन की वजह बनने की सम्भावनासम्पन्नता रखता है। हालाँकि इस परिवर्तन को नेतृत्व देने वाली क्रान्तिकारी हिरावल शक्तियाँ अभी बेहद कमज़ोर हैं लेकिन समय हमेशा एक जैसा नहीं रहता। फ़िलिस्तीन की जनता के संघर्ष के ही बूते कालान्तर में नयी शक्तियाँ उभरेंगी और फ़िलिस्तीन से सुलगी आग पूरे अरब विश्व में एक नये क्रान्तिकारी संघर्ष का बिगुल फूँकेगी।

साम्राज्यवादी देशों की आपसी प्रतिस्पर्धा और गाज़ा का संघर्ष

तुर्की के राष्ट्रपति रेसेप तैयब एर्दोआन गाज़ा पर इज़रायली हमले की शुरुआत से ही कठोर बयानबाज़ी कर रहे हैं। हालाँकि तुर्की नाटो का भी सदस्य है लेकिन इस समय नाटो देशों के भी आपसी मतभेद खुल कर सामने आ रहे हैं। चाहे यूक्रेन युद्ध हो या गाज़ा युद्ध दोनों में नाटो देशों के बीच दरार उभरकर सामने आयी है। तुर्की पहला अरब देश था जिसने 1949 में इज़रायल को मान्यता दी थी। आज वह पश्चिम के अपने साम्राज्यवादी मित्रों से भी सम्बन्ध बनाये रखना चाहता है साथ ही रूस के साथ अपनी मित्रता को बढ़ा रहा है। अरब विश्व में तुर्की की अपनी महत्वाकांक्षाएँ हैं। इज़रायल के साथ कूटनीतिक और व्यापार सम्बन्ध भी हैं और यह गाज़ा हमले के लिए इज़रायल की आलोचना भी करता है और कई अन्य मसलों पर उसका इज़रायल के साथ अन्तरविरोध भी है। तुर्की की जनता भी इन कलाबाज़ियों को काफ़ी हद तक समझ रही है।

तुर्की के साथ रूस और चीन की बढ़ती निकटता अमेरिका और नाटो देशों के लिए ख़तरा है। रूस और ईरान तो पहले से ही एक ही धुरी का अंग हैं और ईरान अरब विश्व में अपनी महत्वकांक्षा के लिए इसका इस्तेमाल कर रहा है। यमन के हूती विद्रोही रूस-चीन धुरी के ही अंग हैं और ईरान उनका प्रत्यक्ष समर्थक व अवलम्ब है। हूतियों ने गाज़ा के समर्थन में लाल सागर से इज़रायल जा रहे जहाज़ों का आना-जाना बन्द कर दिया है और ऐसे जहाज़ों पर बमबारी कर रहे हैं। इसके जवाब में अमेरिका ने लाल सागर में "सुरक्षा" के लिए एक मोर्चा बनाया है, हूतियों के ठिकानों पर कुछ बमबारी भी की है, लेकिन यह सब काम नहीं आ रहा है और ईरान खुलकर लाल सागर मसले में अपना हस्तक्षेप बढ़ाता जा रहा है, जो अमेरिका के लिए संकट पैदा कर रहा है।

चाहे चीन हो या रूस किसी भी देश के शासक वर्ग को गाज़ा की जनता और उनके संघर्षों से कुछ लेन-देना नहीं है। रूस जो स्वयं यूक्रेन की जनता पर 2014 से हमले कर रहा है (हालाँकि यूक्रेन में खुद एक अर्द्धनात्सी सत्ता बैठी है और रूस से टकराव के लिए काफ़ी हद तक वह ज़िम्मेदार है) और 2022 से लगातार बमबारी और तबाही कर रहा है वह क्योंकर गाज़ा की जनता के लिए कोई मदद करेगा! चीन हाँगकांग और स्वयं चीन के भीतर जनता के जनवादी अधिकारों को छीनने पर आमादा है, उसकी गाज़ा की जनता से कोई ख़ास सहानुभूति नहीं है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो किसी भी साम्राज्यवादी देश के शासक वर्ग की उत्पीड़ित और शोषित जनता के प्रति कोई सहानुभूति नहीं होती। उनके लिए मात्र साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाएँ केन्द्र में होती हैं। इसके अलावा बाक़ी राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय समीकरण होते हैं। अपने कृत्यों के भोंडे सच की लीपापोती के लिए तमाम बयानबाज़ियाँ होती हैं, संगठन होते हैं। साम्राज्यवादी देशों के बनाये संस्थान संयुक्त राष्ट्र को भी इस रोशनी में हम समझ सकते हैं। मात्र आँकड़े बताने और कुछ मानवीय मदद के अलावा पिछले 75 सालों में फ़िलिस्तीन के हक़-अधिकार के लिए संयुक्त राष्ट्र कुछ नहीं कर सका क्योंकि यह हत्यारे शोषक साम्राज्यवादी देशों का मानवतावादी मुखौटा मात्र है।

गाज़ा का संघर्ष और भारत का मज़दूर वर्ग

अपने देश में हो रहे अन्याय और अन्य देशों की जनता के साथ हो रहे अन्याय के खिलाफ़ मज़दूर वर्ग मुखर होकर बोलता है। मज़दूर वर्ग अन्याय से ज़ार-ज़ार होती ज़िन्दगी की कठिनाइयों से वाकिफ़ होता है। इसलिए वह अन्याय के खिलाफ़ खड़ा होता है और अन्याय के खिलाफ़ हो रहे प्रतिरोध संघर्ष को अपना समर्थन देता है, चाहे वह अन्याय दुनिया के किसी भी कोने में हो। गाज़ा की जनता अन्याय के खिलाफ़ बहादुराना संघर्ष की मिसाल है। चाहे रोज़-रोज़ इज़रायल के विस्तारवादी सेटलर औपनिवेशिक मंसूबों के खिलाफ़ संघर्ष हो, ज़िन्दगी जीने के लिए सुरंग बनाने से लेकर तबाह अस्पतालों, घरों, स्कूलों या पार्कों को बार-बार बनाते रहना हो, सभी जगह उनका संघर्ष एक मिसाल है। दुनिया के मज़दूरों के लिए गाज़ा अदम्य व सतत संघर्ष की आज मिसाल बन गया है। गाज़ा हमें सिखलाता है कि उम्मीद, ऊर्जा और जोश के साथ की तरह कठिन और बेहद कुर्बानी भरी परिस्थितियों में भी संघर्ष कैसे जारी रखा जाता है। हम सभी मज़दूर जो अन्याय के खिलाफ़ बेझिझक आवाज़ उठाते हैं हम सबके अन्दर गाज़ा है। हम सभी के लिए गाज़ा जीवन, संघर्ष, साहस और आज़ादी की आदिम चाहत की मिसाल है।

राष्ट्रीय पेंशन योजना : कर्मचारियों के हक़ों पर मोदी सरकार का एक और हमला

● अविनाश

नयी राष्ट्रीय पेंशन योजना को रद्द कर पुरानी पेंशन की बहाली और मोदी सरकार के कर्मचारी विरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ एकबार फिर कर्मचारी सड़कों पर हैं। रेलवे यूनियनों के संयुक्त आह्वान पर देशभर में कमर्चारियों ने चार दिवसीय (9 जनवरी से 12 जनवरी तक) क्रमिक अनशन पर हैं। कर्मचारियों के इस अनशन का **भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI)** ने दिल्ली, उत्तर प्रदेश और देश के अन्य हिस्सों में अपना समर्थन दिया। मोदी सरकार ने मज़दूरों-कर्मचारियों के पेंशन के बुनियादी हक़ पर भी डाका डाला है। इसके ख़िलाफ़ देशभर के कई राज्यों में सरकारी कर्मचारियों का धरना-प्रदर्शन चल रहा है। RWPI के प्रवक्ता ने बताया कि वे हर जगह उनकी इस लडाई में शामिल है।

इलाहाबाद में कर्मचारियों को सम्बोधित करते हुए आरडब्ल्यूपीआई की नीशू ने कहा कि 'नेशनल पेंशन स्कीम' असल में 'नो पेंशन स्कीम' है, यह सीधे तौर पर सरकार द्वारा कर्मचारियों के भविष्य पर हमला है। एनपीएस स्कीम एक अंशदायी स्कीम है जिसमें कर्मचारियों के वेतन से 10% काटा जायेगा और 10% सरकार द्वारा अंशदान के रूप में दिया जायेगा। काटे गये पैसे को शेयर मार्केट में लगाया जायेगा। अगर शेयर मार्केट डूब गया तो कर्मचारियों का पैसा डूब जायेगा, लेकिन सरकार इसकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं लेगी। पुरानी पेंशन (गारण्टीड पेंशन स्कीम) में कोई कटौती नहीं होती थी, तथा कर्मचारियों के रिटायर होने पर उस समय के अन्तिम वेतन (मूल वेतन और महँगाई भत्ता) का पचास प्रतिशत पेंशन के रूप में देने का प्रावधान था, लेकिन 'नेशनल पेंशन स्कीम (एनपीएस) में सेवानिवृत्ति पर कुल रक़म जो शेयर मार्केट निर्धारित करेगा, उसका 40% प्रतिशत की सरकार आयकर के रूप में कटौती कर लेगी। तथा बची हुई 60% की राशि का ब्याज़ पेंशन के रूप में दिया जायेगा, जो बहुत ही कम होगा। इतना ही नहीं, इसमें सेवाकाल के दौरान कर्मचारी की स्थायी अपंगता व मृत्यु के पश्चात परिवार की ज़िम्मेदारी का निर्वहन व भविष्य के लिए कोई उल्लेख नहीं है।

कुल मिलाकर यह कि सरकारी कर्मचारियों को सामाजिक सुरक्षा के नाम पर जो कुछ भी मिलता था, उसको भी ख़त्म कर देने की योजना है। 2014 में "अच्छे दिन" का सपना दिखाकर सत्ता में पहुँची फ़ासीवादी मोदी सरकार ने अपने 10 सालों के शासनकाल में आम मेहनतकश आबादी पर कहर ही बरपाया है। पिछले 5 सालों में मोदी सरकार पूँजीपतियों के 10.6 लाख करोड़ का कर्ज़ माफ़ कर चुकी है। जिसकी भरपाई आम जनता के जेब से कर रही है। लगतार अप्रत्यक्ष करों को बढ़ाकर महँगाई बढ़ाई जा रही है। विभागों के निजीकरण से रोज़गार का संकट और भी विकराल होता जा रहा है। मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था आर्थिक संकट के लाइलाज़ भँवरजाल में फँस चुकी है। 1990–91 में आर्थिक उदारीकरण–निजीकरण की नीतियाँ इसी भँवरजाल से निकल पाने की कवायद थीं। इन नीतियों के तहत सार्वजनिक उपक्रमों का तेजी से निजीकरण किया गया जिसका परिणाम है कि रोज़गार के अवसर तेजी से कम हुए और आज बेरोज़गारी विकराल रूप ले चुकी है। विभागों में नियमित भर्तियों की जगह ठेके-संविदा पर लोगों को रखा जा रहा है। सालों-साल नौकरियों के लिए तैयारी करने के बाद भी छात्रों का खाली हाथ घर लौटना आम नियम बन चुका है। कई बार हताश-निराश छात्र आत्महत्या जैसे क़दम उठा रहे है। दूसरी ओर मोदी सरकार ने पूँजीपतियों को मज़दूरों के श्रम को निचोड़ने लिए खुली छूट दे रखी है। इसी काम को क़ानूनी जामा पहनाने के लिए श्रम कानूनों को खत्म कर श्रम संहिताएं लायी गयी हैं। कर्मचारियों को मिलने वाले पेंशन–भत्तों में लगातार कटौती की जा रही है। इन कटौतियों के खिलाफ़ रेलवे, बैंक, बिजली, रोडवेज, शिक्षा विभाग आदि के कर्मचारी लगातार संघर्षरत हैं।

आज अपने आन्दोलन में हमें कुछ बातों को ध्यान रखने की ज़रूरत है। **सबसे पहली बात यह कि हमें अपने आन्दोलन को चुनावबाज़ पार्टियों और संशोधनवादियों के नेतृत्व से मुक्त करना होगा क्योंकि तमाम गरम-गरम बातों के बावज़ूद सच्चाई यही है कि सभी चुनावबाज़ पार्टियाँ निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों पर एकमत है और इसलिए ये कभी भी हमारे मुद्दों पर जुझारू आन्दोलन नहीं चलायेंगे। दूसरे हमें अपने आन्दोलन से छात्रों और असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले करोड़ो मज़दूरों को जोड़ने की ज़रूरत है क्योंकि यह आबादी भी निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों की मार झेल रही है। आज कर्मचारी-छात्र-मज़दूर एकता कायम करके ही उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के ख़िलाफ़ संघर्ष का रास्ता अपनाया जाये।**

नयी आपराधिक प्रक्रिया संहिताएँ, जनता के दमन के नये औज़ार

(पेज 1 से आगे)

अपराधों के लिए सज़ा का प्रावधान दण्ड संहिताओं में ही परिभाषित होता है। मोदी सरकार अब इन परिभाषाओं को बदल रही है। पुरानी संहिताओं के बदले नयी संहिताओं को ला रही है। इन संहिताओं में किये बदलावों को अगर देखें तो आने वाले बर्बर समय की आहट महसूस की जा सकती है, जिसकी ज़द में तमाम इन्साफ़पसन्द नागरिक, जनपक्षधर बुद्धिजीवी, पत्रकार, क्रान्तिकारी राजनीतिक कार्यकर्ता से लेकर आम मेहनतकश आबादी आयेगी। इन संहिताओं के कुछ नुक़्तों को ध्यान से देखने से इसकी अन्तर्वस्तु का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता जिसे दण्ड प्रक्रिया संहिता के स्थान पर लाया जा रहा है, वह आम नागरिकों की कितनी "सुरक्षा" करेगी इसे पुलिस हिरासत में रखने की अवधि सम्बन्धी उसके प्रावधान से समझा जा सकता है। पहले किसी भी व्यक्ति की गिरफ़्तारी के बाद उसे अधिकतम 15 दिनों तक ही पुलिस हिरासत में रखा जा सकता था, उसके बाद जाँच के दौरान कोई भी रिमांड केवल न्यायिक तौर पर ही हो सकती थी, पुलिस अपनी मर्ज़ी से हिरासत में नहीं रख सकती थी। किन्तु नये "न्याय" संहिताओं के तहत अब पुलिस जाँच की पूरी अवधि के दौरान, जोकि 90 दिनों तक हो सकती है, किसी भी व्यक्ति को हिरासत में रख सकती है। निश्चित तौर पर यह पुलिसिया दमन को बढ़ाने का काम करेगा। पुलिसिया दमन तन्त्र को और मज़बूत करने के लिए विधेयक में एक नया प्रस्ताव जोड़ा गया है, जिसके अनुरूप एक पुलिस अधिकारी को किसी भी सम्पत्ति को कुर्क करने की शक्ति देता है, जिसे वह "अपराध की आय" मानता है। जिस प्रकार से आये दिन अल्पसंख्यकों, मज़लूमों के ऊपर बुलडोज़र चलाने का काम किया जा रहा है, तो यह समझ जा सकता है कि इस प्रकार के प्रावधान का क्या हश्र होने वाला है। अब बस फ़र्क़ यह है कि पहले जो दमन चक्र "अवैधानिक" था अब वह संवैधानिक होगा।

फ़ासिस्टों के "न्याय" में अंग्रेज़ों के काले क़ानूनों से ज़्यादा अँधियारा है। ग़ौरतलब है कि मानसून सत्र में पेश किया गये पहले मसौदे में आतंकवाद के अपराध की परिभाषा, इन नयी "न्याय" संहिताओं के लाने के असल औचित्य को नंगे रूप से रेखांकित करती थी, हालाँकि बाद में उसे संशोधित कर एक पुरानी परिभाषा को ही अंगीकार कर पेश किया गया, जोकि इन नये संहिताओं के मर्म को बखूबी पेश करता है। आने वाले समय में व्यवहार में इन संहिताओं को किस तरह से लागू किया जायेगा, इसका अन्दाज़ा लगाना कोई अन्तरिक्ष विज्ञान का मसला नहीं है।

विधेयक के पहले संस्करण में आतंकवादी कृत्य के दायरे में अस्पष्ट कृत्य शामिल थे जैसे; आम जनता या उसके एक हिस्से को डराना, सार्वजनिक व्यवस्था में खलल डालना, भय का माहौल बनाना या भय का संदेश फैलाना; देश की राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक संरचनाओं को अस्थिर करना या नष्ट करना, या सार्वजनिक आपात स्थिति पैदा करना या सार्वजनिक सुरक्षा को कमज़ोर करना। तदनुसार, एक अहिंसक भाषण को भी इस परिभाषा के तहत आतंकवादी कृत्य के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

बहरहाल, संशोधन के बाद उसी तथ्य को, जो पहले पेश संस्करण की तुलना में अधिक लच्छेदार भाषा में पहले से ही मौजूद था, उठा लिया गया है। संशोधित विधेयक की धारा 113 ने गैरक़ानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1967 (यूएपीए) की धारा 15 के तहत मौजूदा परिभाषा को पूरी तरह से अपनाने के लिए आतंकवाद के अपराध की परिभाषा को संशोधित किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यूएपीए के तहत सत्ता अपने मन मुआफ़िक किसी भी कृत्य को आतंकवाद की श्रेणी में डाल सकती है। यूएपीए, जैसा काला क़ानून, भारत की एकता, अखण्डता, सुरक्षा, आर्थिक सुरक्षा या सम्प्रभुता **के लिए ख़तरा पैदा करने के इरादे** या उसे **खतरे में डालने की सम्भावना** वाले किसी भी कार्य को या **आतंक फैलाने के इरादे** या **आतंक** फैलाने **की सम्भावना** को आतंकवादी कृत्य के रूप में परिभाषित करता है। यानी, इरादे और सम्भावना के आधार पर किसी को भी आतंकवादी घोषित किया जा सकता है!

नयी भारतीय न्याय संहिता के तहत "राजद्रोह" को अपराध के रूप में निरस्त कर दिया गया है। इसे पुरानी भारतीय दण्ड संहिता में सबसे महत्वपूर्ण "सुधारों" में से एक के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। काग़ज़ पर सच होते हुए भी, असल में यह जनवादी अधिकारों पर बड़ा हमला है। गृह मंत्रालय ने क़ानून से "राजद्रोह" शब्द (आईपीसी की पूर्व धारा 124 ए) को हटा दिया है, किन्तु उसके एवज में जिन विधानों को स्थान दिया गया है, वह राजद्रोह के पुराने क़ानून के प्रावधानों से कहीं अधिक ख़तरनाक हैं। भारतीय न्याय संहिता का खंड 150 जिसका शीर्षक 'भारत की सम्प्रभुता, एकता और अखण्डता को ख़तरे में डालने वाले कृत्य' हैं, अपने पूर्वर्ती विधान की तुलना में कहीं अधिक अस्पष्ट और व्यापक शब्दावली वाला है।

यह खण्ड "भारत की सम्प्रभुता, एकता और अखण्डता को ख़तरे में डालने वाले कृत्यों (जिसमें इलेक्ट्रॉनिक संचार का उपयोग करना भी शामिल है) को, सशस्त्र विद्रोह, विध्वंसक गतिविधियों, अलगाव, अलगाववाद को उत्तेजित करने या भारत की एकता, सम्प्रभुता और अखण्डता को ख़तरे में डालने" को अपराध मानता है। असल में राजद्रोह क़ानून से राजद्रोह शब्द को हटा दिया गया है, किन्तु सरकार के ख़िलाफ़ उठाने वाली किसी भी आवाज़ को "देश की सम्प्रभुता पर हमला" के नाम पर दण्डित किया जा सकता है। देश के प्रति वफ़ादारी, अब देश की जनता के प्रति वफ़ादारी नहीं है, बल्कि सरकार के प्रति वफ़ादारी बना दी गयी है। इसकी शब्दावली की अस्पष्टता के कारण सत्ता इसका व्यापक इस्तेमाल करेगी, एक आम राजनीतिक भाषण, या किसी भी प्रकार की असहमति या सोशल मीडिया के पोस्ट को भी "एकता और अखण्डता को खतरे में डालने वाला कृत्य" करार दिया जा सकता है। मजेदार बात यह है कि आईपीसी की धारा 124ए के तहत बतौर सज़ा जुर्माना भरने का प्रावधान था, लेकिन इसके विपरीत, नए खण्ड 150 के तहत सज़ा में सभी परिस्थितियों में कारावास का प्रावधान है।

नयी संहिताओं के तहत अब किसी अभियुक्त पर उसकी अनुपस्थिति में भी मुक़दमा चलाया जा सकता है। साक्ष्य अधिनियम में बदलाव के साथ, इलेक्ट्रॉनिक और डिजिटल रिकॉर्ड को अदालत के समक्ष साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। ईमेल, इलेक्ट्रॉनिक सन्देश, सर्वर लॉग, स्थान विवरण आदि सभी को इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य के हिस्से के रूप में शामिल किया जाएगा, जो अदालत में स्वीकार्य होगा। नया क़ानून स्पष्ट रूप से जाँच के दौरान फ़ोन, लैपटॉप आदि जैसे डिजिटल उपकरणों को ज़ब्त करने की अनुमति देता है। यह अधिनियम लोगों की निजता पर हमला है, यह इलेक्ट्रॉनिक सर्विलांस को वैधता प्रदान करता है। इसकी आड़ में आम लोगों के ऊपर निगरानी रखने का काम किया जायेगा।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि नयी आपराधिक क़ानून संहिता जनता के दमन का नया औज़ार है। अव्वलन, भारतीय दण्ड संहिता हो या भारतीय न्याय संहिता, ये सभी संहिताएँ जनता के दमन का ही निकाय हैं। राज्यसत्ता शासक वर्ग के शासन का निकाय है, जो बल-प्रयोग का काम करती है। व्यवस्था अपने संकट के कुचक्र में फँसी हुई है, ऐसे में राजनीतिक बागडोर फ़ासीवादी ताक़तों के हाथ में रहे, इसके लिए उसे और धारदार हथियार की ज़रूरत है, नयी आपराधिक क़ानून संहिता वही हथियार है।

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा (दूसरा चरण : 10 दिसम्बर से 3 मार्च)

एक संक्षिप्त रिपोर्ट

भगतसिंह की बात सुनो – नयी क्रान्ति की राह चुनो!

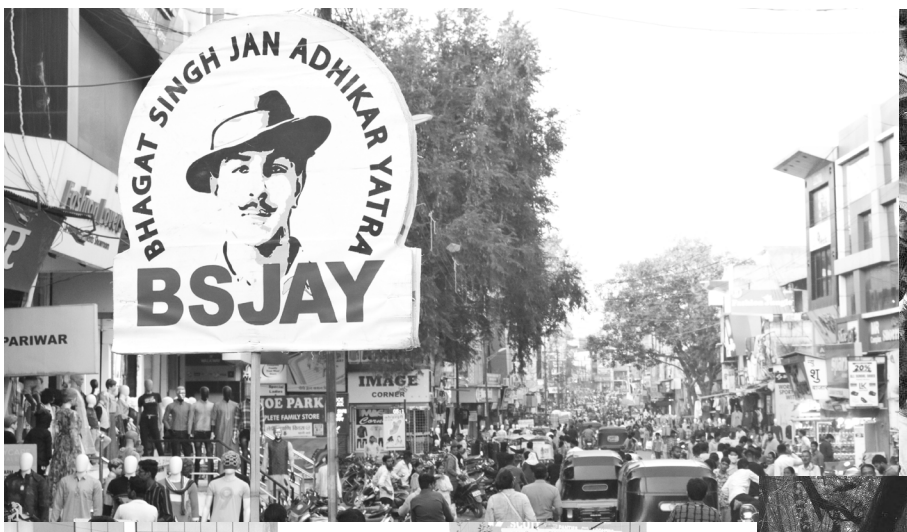

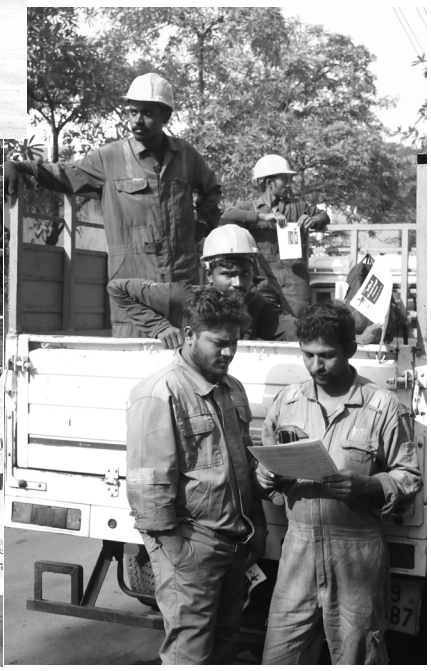

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा के दूसरे चरण की शुरुआत बीते साल 10 दिसम्बर को कर्नाटका के बेंगलुरु से हुई। देश के 13 राज्यों, 85 से अधिक ज़िलों से होती हुई यह यात्रा तक़रीबन 8500 किलोमीटर के फ़ासले को तय करके 3 मार्च को देश की राजधानी दिल्ली में समाप्त होगी।

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा का मक़सद है मेहनतकश अवाम को उनकी ज़िन्दगी के असल सवालों पर जागृत, गोलबन्द और संगठित करना। महँगाई, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, अशिक्षा और बढ़ती साम्प्रदायिकता के खिलाफ़ यह यात्रा **भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI)**, नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन, स्त्री मुक्ति लीग व अन्य कई क्रान्तिकारी यूनियनों द्वारा निकाली जा रही है। रिपोर्ट लिखे जाने तक यात्रा आन्ध्र प्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश के एक हिस्से से गुज़रती हुई बिहार में दाख़िल हो चुकी है।

यात्रा के फलस्वरूप, 'महँगाई पर रोक लगाओ', 'हर हाथ को काम दो', 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून पारित करो', 'निःशुल्क और एकसमान शिक्षा लेकर रहेंगे', 'जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो' इत्यादि जैसे नारे जनता के बीच अपनी जगह बना रहे हैं। यात्रा जनता की ठोस माँगों और क्रान्तिकारियों के सन्देश को पर्चों, सभाओं, गीतों, नाटकों और नये-नये नारों के माध्यम से गाँव, शहर, झुग्गियों, गलियों, चौराहों तक लेकर जा रही है। मज़दूर बस्तियों से लेकर, फैक्ट्री-कारख़ानों, निम्न मध्यवर्ग की कॉलोनियों, सरकारी दफ़्तरों और कॉलेज-विश्वविद्यालय तक में मिली आबादी ने भगतसिंह जन अधिकार यात्रा की माँगों से सहमति जतायी और इसे आज के वक़्त की ज़रूरत बताया।

कर्नाटक के बेंगलुरु में यात्रा अपने पहले दिन शहर के प्रमुख चौकों, बाज़ारों और आसपास की बस्तियों से होकर गुज़री। दुकानदारों से लेकर रेहड़ी-खोमचे वाले और आसपास काम पर रहे मजदूरों ने यात्रियों की बात को सुना और फ़ासीवादी मोदी सरकार के विरुद्ध आवाज़ उठाने की बात कही।

आन्ध्र प्रदेश में यात्रा ने आठ दिनों के दौरान तिरुपति, मंगलगिरी, ताड़ेपल्ली, विजयवाड़ा और विशाखापत्तनम में हज़ारों लोगों के बीच जाकर अपना सन्देश दिया। इस राज्य में सबसे अधिक लोग बेरोज़गारी से परेशान हैं। साल 2022 में आन्ध्र में छात्रों के बीच आत्महत्या दर 10 फ़ीसदी बढ़ी है। आन्ध्र विश्वविद्यालय से लेकर आचार्य नागार्जुन विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राओं के बीच यात्रा ने बढ़ती बेरोज़गारी और छात्रों के बीच फैली निराशा के कारणों पर बात रखी और इसको बदलने के लिए साथ आने का आह्वान किया। इसके अलावा यात्रा मछुआरों की बस्ती, सफ़ाई मज़दूरों की बस्ती और बन्दरगाह पर काम करने वाले मजदूरों के बीच भी गयी और उनकी विशिष्ट माँगों को उठाया।

तेलंगाना में तीन दिनों के दौरान यात्रा खम्मम और हैदराबाद में निकाली गयी। दोनों ही जगहों पर स्थानीय लोगों ने ना सिर्फ़ यात्रा को सराहा बल्कि इसमें शामिल भी हुए। तेलंगाना किसान विद्रोह के जुझारू संघर्ष का केंद्र रहे खम्मम में लोगों ने शिक्षा, रोज़गार, आवास, स्वास्थ्य के हक़ के लिए व्यापक जनएकजुटता कायम करने की बात कही।

महाराष्ट्र में यात्रा परभणी, औरंगाबाद, अहमदनगर, पुणे होते हुए मुम्बई और नासिक पहुँची। पुणे में यात्रा जब तळजाई पहुँची तो संघ परिवार के पालतू लम्पट गुण्डों ने "जय श्री राम" के नारे लगाते हुए सभा में ख़लल डालने की कोशिश की मगर आम जनता से यात्रा को मिलता समर्थन देख वे उल्टे पाँव भागने को मजबूर हुए। पुणे जिले में यात्रा राजगुरु के गाँव और सावित्रीबाई फुले के गाँव भी गयी। मुम्बई व आसपास के क्षेत्रों में ठाणे और दादर के इलाक़े में मिले मज़दूरों ने कहा कि मोदी सरकार द्वारा लाये गये चार लेबर कोड ने हमें आधुनिक ग़ुलामों की क़तार में शामिल कर दिया है। उन्होंने बताया कि यात्रा ने उन्हें अपने गौरवमयी इतिहास की याद दिलायी है और इस निराशा और पस्तहिम्मती के दौर में नयी ऊर्जा का संचार किया है। दादर वह इलाक़ा है जो कभी ट्रेड यूनियन हड़तालों व मज़दूर आन्दोलनों के लिए जाना जाता था। इसके अलावा, यात्रा ने मुम्बई में लल्लूभाई कम्पाउण्ड, मानखुर्द, गोवण्डी के क्षेत्र में भी सघन जनसम्पर्क किया और जनता के बीच हज़ारों की संख्या में पर्चे, पुस्तिकाओं आदि का वितरण किया। आगे, यात्रा ने महाराष्ट्र के तलेगाँव में छँटनी, तालाबन्दी के ख़िलाफ़ और पक्के रोज़गार की माँग के लिए हड़ताल पर बैठे जनरल मोटर्स कम्पनी के कर्मचारियों का समर्थन किया।

5) मध्यप्रदेश में तीन दिन रुककर यात्रा ने इन्दौर, भोपाल,जबलपुर और रीवा में प्रचार अभियान चलाया। इन्दौर और भोपाल में छात्रों ने भाजपा राज में चल रहे भ्रष्टाचार और नौजवानों की ज़िन्दगी के साथ खिलवाड़ की स्थिति बयान की। गौ-रक्षा, लव-जिहाद, लैंड जिहाद की आड़ में जनमुद्दों पर मिट्टी डालने की राजनीति की मुखालिफ़त की।

6) उत्तर प्रदेश में यात्रा पहले चरण में इलाहाबाद, बनारस, जौनपुर, आज़मगढ़, अम्बेडकरनगर, मऊ, ग़ाज़ीपुर के विभिन्न इलाक़ों से होते हुए बलिया पहुँची। यात्रा की शुरुआत इलाहाबाद के अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद के शहादत स्थल से हुई जिसके बाद यात्रा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, अकबरपुर, करेली,

(पेज 13 पर जारी)

अब ना समय है – जूझना ही तय है !

(पेज 12 से आगे)

रोशनबाग़ आदि रिहायशी इलाकों सहित छात्र-बहुल इलाक़े छोटा बघाड़ा, सलोरी, कटरा, एलनगंज आदि से गुज़री। 7 जनवरी को भगतसिंह जनअधिकार यात्रा के तहत विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी में 'वैज्ञानिक नज़रिये पर फ़ासीवादी हमला और इसका प्रतिरोध' विषय पर जाने-माने शायर, वैज्ञानिक और फ़िल्मकार गौहर रज़ा ने ऑनलाइन शामिल होकर अपनी बात रखी। 'साम्प्रदायिकता बनाम सच्चा सेक्युलरिज़्म' विषय पर पत्रकार और एक्टिविस्ट सत्यम वर्मा ने विस्तारपूर्वक बात रखी। 'मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान' पत्रिका के सम्पादक प्रसेन ने 'भगतसिंह जनअधिकार यात्रा' क्यों?' विषय पर बात रखी। 9 जनवरी को यात्रा इलाहाबाद से बनारस पहुँची जहाँ यात्रा की शुरुआत फ़ातिमा शेख़ के जन्मदिवस पर कार्यक्रम के साथ की गयी। यूपी में अलग-अलग जगहों पर पुरानी पेंशन बहाली की माँग को लेकर रेलवे कर्मचारियों के चल रहे धरने का भी समर्थन करने यात्रियों की टोली पहुँची। उत्तरप्रदेश में मिले एक बेलदारी करने वाले मज़दूर ने बताया कि "योगीराज में हम मेहनतकशों को भूख, बेकारी, अपमान और जहालत ही नसीब है, हमारे बचे हुए अच्छे दिन भी इस सरकार ने छीन लिये हैं, हमें ईवीएम के ज़रिये चुनाव पर भरोसा नहीं रह गया है!" ठीक इसी तरह की बातें हर बस्ती, हर चौक पर हो रही सभाओं में लोगों से सुनने को मिली। यूपी में उपरोक्त ज़िलों में जन प्रतिक्रिया बहुत ही सकारात्मक रही।

17 जनवरी की सुबह यात्रा ने बिहार में प्रवेश किया है। इसके बाद 23 जनवरी को यात्रा फिर से उत्तर प्रदेश आयेगी और आगे उत्तराखण्ड, हरियाणा, पंजाब, चण्डीगढ़ से गुज़रते हुए दिल्ली पहुँचेगी।

असल में, भाजपा के "अच्छे दिन", "हर साल दो करोड़ रोज़गार", "बहुत हुई महँगाई की मार" जैसे नारों की असलियत आज आम जनता के बीच खुल चुकी है। ख़ासतौर पर उन राज्यों में जहाँ "डबल इंजन" की सरकार है वहाँ तो हालात और भी बुरे हैं। 2014 के बाद से देशभर में मज़दूरों, कर्मचारियों, आंगनवाड़ीकर्मियों, छात्रों, शिक्षकों, डॉक्टरों, खिलाड़ियों, ड्राईवरों यानी अधिकांश क्षेत्र में काम कर रहे लोगों के आन्दोलन और संघर्ष तेज़ हुए हैं।

मन्दिर के नाम पर हजारों करोड़ रुपये ख़र्च करने वाली और चुनाव से पहले धार्मिक उन्माद को हवा देने वाली इस फ़ासीवादी सरकार के समर्थन में बोलने वाला शायद ही कोई व्यक्ति मिला हो। जनता के बीच सरकार की नीतियों के खिलाफ़ भयंकर असन्तोष और गुस्सा है। भाजपा के पक्ष में आज 15 से 20 फ़ीसदी वही आबादी बोल रही है जिसका फ़ासीवादियों ने व्यवस्थित रूप से साम्प्रदायीकरण किया है बाक़ी एक बड़ी आबादी वो है जो इनकी असलियत से वाकिफ़ हो चुकी है और इसलिए ही इस बार 2024 के चुनाव से पहले ये बेहद की आक्रामक तरीके से हिन्दू-मुसलमान, मन्दिर-मस्जिद का खेल खेल रहे हैं। महँगाई और बेरोज़गारी के मुद्दे पर फ़ेल मोदी सरकार अब आम जनता को बता रही है कि यह सब तो ईश्वर का प्रकोप है, रामलला आयेंगे और सब ठीक हो जाएगा!

मगर, यात्रा के पूरे प्रचार अभियान के दौरान लोगों ने समझा है कि महँगाई और बेरोज़गारी ना तो कोई ईश्वरीय प्रकोप है ना कोई प्राकृतिक आपदा बल्कि इसके पीछे मोदी सरकार की पूँजीपरस्त नीतियाँ ज़िम्मेदार हैं। बढ़ती महँगाई का कारण मोदी सरकार द्वारा अमीरों का टैक्स माफ़ करना, उन्हें कर्ज़ मुक्त करना और इसके कारण होने वाले सरकारी घाटे के लिए जनता पर अप्रत्यक्ष टैक्स का बोझ बढ़ाना है। इसी कारण आज महँगाई कमरतोड़ ढंग से बढ़ रही है। बेरोज़गारी भी इस सरकार के भयंकर आर्थिक कुप्रबन्धन, ठेकाकरण और अनौपचारिकीकरण का नतीजा है। इन समस्याओं के लिए ज़िम्मेदार ना तो मुस्लिम आबादी है ना बढ़ती जनसंख्या बल्कि इन समस्याओं की ज़िम्मेदार फ़ासीवादी मोदी सरकार और पीछे खड़ा संघ परिवार है जो मेहनतकश अवाम के सबसे बड़े दुश्मन हैं।

भगतसिंह जनअधिकार यात्रा के तहत यह सन्देश अवाम तक पहुँचाया जा रहा है कि अगर आज हम अपने ठोस मुद्दों पर लड़ेंगे तभी हम अपनी आने वाली पीढ़ी, अपने बच्चों को एक बेहतर भविष्य दे पायेंगे। धर्म और मन्दिर-मस्जिद की राजनीति के ज़रिये सत्ता में बैठे फ़ासिस्ट हमें आपस में लड़ाकर अम्बानी-अडाणी की तिजोरियाँ भर रहे हैं। हमें अशफाक़-बिस्मिल की विरासत को आगे लेकर जाना होगा और इनकी साम्प्रदायिक राजनीति का मुँहतोड़ जवाब देना होगा।

रोज़गार के मूलभूत अधिकार की माँग, ठेका प्रथा ख़त्म करने की माँग, पेंशन की माँग, एकसामान और निःशुल्क शिक्षा-चिकित्सा की माँग, अप्रत्यक्ष करों के ख़ात्मे की माँग और राजनीति को धर्म से पूरी तरह अलग करने वाले क़ानून की माँग पर संगठित होकर जुझारू संघर्ष खड़ा करना ही एकमात्र विकल्प है।

– बिगुल संवाददाता

पर्यावरणीय विनाश पर ऑक्सफ़ैम की नयी रिपोर्ट

पर्यावरणीय विनाश के लिए ज़िम्मेदार पूँजीपति वर्ग और उसकी मार झेलती मेहनतकश आबादी

● सार्थक

आज मेहनतकश जनता के सामने पर्यावरणीय विनाश और जलवायु संकट एक ऐसा मुद्दा बन चुका है जिससे हम मुँह नहीं मोड़ सकते। चाहे गर्मियों के महीनों में भयंकर लू हो, नवम्बर के महीने की दमघोंटू हवा हो, दिसम्बर-जनवरी में हड्डियों को चुभने वाली शीतलहर या हर साल ज़्यादा तीव्र और नियमित होती जा रही बाढ़ या सूखे की आपदा हो। पर्यावरणीय विनाश से पैदा हुई इन आपदाओं की मार सबसे ज़्यादा मेहनतकश जनता को ही झेलनी पड़ती है। वातानुकूलित घरों, ऑफ़िसों और गाड़ियों में बैठने वाले अमीरों को लू और शीतलहर का पता भी नहीं चलता। लेकिन मेहनतकश आबादी के लिए, जो 12-12 घण्टे फ़ैक्ट्रियों में अपनी हड्डियाँ गलाते हैं, झुग्गियों में रहते हैं और ठसाठस भरी बसों और जनरल बोगियों में सफर करते हैं, लू और शीतलहर जानलेवा होते हैं।

हम भूले नहीं हैं किस तरह इस साल के जून महीने में पूर्वी उत्तरप्रदेश और बिहार में सैकड़ों लोग लू लगने के कारण मारे गये थे। दुनिया के 100 सबसे प्रदूषित शहरों में 90 शहर हमारे देश में ही हैं। उत्तरी भारत में प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन के कारण एक औसत इंसान की जीवन प्रत्याशा 8 साल काम हो गयी है। सर्दियों के शुरुआती दिनों में जब वायु प्रदूषण अपने चरम पर पहुँच जाता है तब दिल्ली, मुम्बई जैसे बड़े शहरों में सरकारें निर्माण गतिविधियों पर रोक लगा देती हैं जिससे निर्माण कार्य में लगे दिहाड़ी मज़दूरों के पेट पर सीधे लात पड़ती है।

तेज़ी से बढ़ते गृत्वी के तापमान के कारण अनाज और फल सब्ज़ियों की पैदावार में गिरावट आती है और तात्कालिक तौर पर इनकी बाज़ार क़ीमतें बढ़ जाती हैं। पिछले साल अत्यधिक गर्मी के कारण वैश्विक स्तर पर गेहूँ और धान उत्पादन में क्रमशः 0.9 प्रतिशत और 0.3 प्रतिशत की गिरावट देखी गयी। इस साल जुलाई अगस्त में टमाटर की क़ीमतों ने जिस तरह आसमान छुए थे, उसका एक कारण था टमाटर उत्पादक राज्यों में हुई बेमौसम बारिश और बाढ़। हम देख सकते हैं कि जलवायु संकट आज न केवल धरती पर इंसानियत के अस्तित्व को खतरे में डाल रहा है, बल्कि मुनाफ़ाखोर पूँजीवादी व्यवस्था में पहले से बेरोज़गारी और कमरतोड़ महँगाई का दंश झेल रही मेहनतकश जनता की स्थिति को ज़्यादा विकट बना रहा है, इसे ग़रीबी और भुखमरी के अंधेरे कुएं में ज़्यादा गहराइयों में धकेल रहा है। लेकिन क्या यह जलवायु संकट और पर्यावरणीय विनाश महज़ प्राकृतिक आपदाएँ हैं जिनपर हमारा कोई वश नहीं है? नहीं! असामान्य रूप से बढ़ती लू, शीतलहर, बाढ़, सूखा आदि महज़ कोई प्राकृतिक आपदाएँ नहीं हैं बल्कि इस पूँजीवादी व्यवस्था की देन हैं। मुनाफ़े की हवस में अँधा पूँजीपति वर्ग आज प्रकृति का अन्धाधुन्ध दोहन कर रहा है जिसके घातक नतीजे हमें झेलने पड़ रहे हैं।

पिछले महीने ऑक्सफ़ैम द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट ने यह दिखलाया है कि दुनिया के 1 प्रतिशत सबसे अमीर लोग 16 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन के लिए और 10 प्रतिशत सबसे अमीर लोग 50 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन के लिए ज़िम्मेदार हैं। दुनिया के सबसे ग़रीब 66 प्रतिशत लोग, जिसमें हम और आप भी शामिल हैं, जितना कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन करते हैं, उससे ज़्यादा प्रदूषण दुनिया के 1 प्रतिशत लोग करते हैं। 2022 में 125 अरबपतियों ने अपने उद्योगों में औसतन 30 लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन किया जबकि दुनिया की सबसे ग़रीब 90 प्रतिशत आबादी इस साल औसतन महज़ 3 टन कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन के लिए ज़िम्मेदार है। **ग्रीनपीस फाउण्डेशन के अनुसार पिछले तीन सालों में यूरोप के अमीरों ने अपने निजी हवाई जहाज़ों से 53 लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन किया है।** भारत में भी ऐसे कई हज़ार अमीर आज मौजूद हैं, जो अपने निजी हवाई जहाज़ों से चलते हैं। जिन 1 प्रतिशत अमीरों ने पिछले दो साल में दुनिया में पैदा हुए कुल नये धन, यानी नये मूल्य, का दो-तिहाई हिस्सा हथिया लिया वही पूँजीपति प्रदूषण के लिए भी सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदार हैं। **यानी जो मेहनत की लूट के लिए ज़िम्मेदार हैं, वही कुदरत की तबाही के लिए भी ज़िम्मेदार हैं : यानी, दुनिया के अमीरज़ादे, धन्नासेठ, कारख़ाना-मालिक, ठेकेदार, कुलक व धनी फ़ार्मर, बिचौलिये, दलाल, ठेकेदार, सट्टेबाज़। कुल मिलाकर कहें, तो पूँजीपति वर्ग।**

1988 से अब तक हुए कुल औद्योगिक कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन का 70 प्रतिशत दुनिया की केवल 100 सबसे बड़ी तेल, गैस और कोयला कम्पनियों ने किया है। ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट के अनुसार यह प्रदूषण जो अमीरज़ादे, पूँजीपति, धनी किसान और नेता-मंत्री अपने मुनाफ़े की दर और अय्याशी भरी जीवनशैली को बनाये रखने के लिए करते हैं, उसके कारण पृथ्वी के तापमान में होने वाली वृद्धि 13 लाख अतिरिक्त मौतों के लिए ज़िम्मेदार है। इस रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि ऐसे देश जहाँ

आर्थिक असमानता ज़्यादा है, वहाँ तुलनात्मक तौर पर बेहतर आर्थिक समानता वाले देशों के मुक़ाबले 7 गुना ज़्यादा लोग बाढ़ से मरते हैं।

ऑक्सफ़ैम की इस रिपोर्ट ने एक बार फिर यह साबित कर दिया है कि पर्यावरणीय विनाश और जलवायु संकट महज़ कोई प्राकृतिक आपदा नहीं है और न ही इसके लिए आम जनता ज़िम्मेदार है। मुट्ठीभर पूँजीपतियों ने मुनाफ़े की होड़ में जलवायु संकट को इतने भयानक स्तर पर पहुँचा दिया है कि पूँजीवादी दाता एजेंसियों के टुकड़ों पर पलने वाले ऑक्सफ़ैम जैसे एनजीओ को भी आज यह लिखना पड़ रहा है कि *"करोड़पतियों की लूट और प्रदूषण ने धरती को विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। समूची इंसानियत आज अत्यधिक गर्मी, बाढ़ और सूखे से दम तोड़ रही है।"* इस रिपोर्ट ने एक बार फिर यह दिखा दिया है कि पर्यावरण को बचाने का हमारा संघर्ष समाज में चल रहे आम वर्ग संघर्ष का ही एक हिस्सा है। **पर्यावरण के क्षेत्र में चल रहे इस वर्ग संघर्ष में भी हम मज़दूर वर्ग को ही नेतृत्वकारी भूमिका निभानी होगी।**

जलवायु संकट और पर्यावरणीय विनाश का आमूलचूल समाधान इस पूँजीवादी व्यवस्था की चौहद्दियों में नामुमकिन है। इस धरती और इंसानियत को पूरी तरह तभी बचाया जा सकता है जब एक ऐसी व्यवस्था क़ायम होगी जो मुनाफ़े पर टिकी न हो बल्कि इंसानी ज़रूरतों को केन्द्र में रखती हो। लेकिन इस लम्बी लड़ाई के लिए कमर कसने के साथ साथ जलवायु संकट से कुछ तत्कालिक राहत पाने के लिए हमें सरकारों के सामने कुछ ठोस माँगें भी रखनी होंगी। अपनी लागत को कम रखकर मुनाफ़े की दर को बढ़ाने के लिए पूँजीपति उन उपकरणों को नहीं ख़रीदते जिनसे फैक्ट्रियों से निकलने वाला दूषित जल और हवा को या तो कम किया जा सकता है या उन्हें परिष्कृत किया जा सकता है। प्रदूषण नियंत्रण की आधुनिकतम तकनीक उपयोग में लाना उद्योगों के लिए अनिवार्य किया जाना चाहिए। जो नियम का पालन न करे उस पर जुर्माना होना चाहिए और दो चेतावनी के बाद कारखाना सरकार को अपने क़ब्ज़े में ले लेना चाहिए।

जब पूँजीपति वर्ग बेलगाम कार्बन उत्सर्जन के ज़रिये गृथ्वी का तापमान बढ़ाने के लिए सीधे ज़िम्मेदार है तो कार्बन उत्सर्जन को कम करने के लिए जो ख़र्च होगा उसकी भरपाई भी सीधे पूँजीपति वर्ग को ही करनी चाहिए। जितने भी कल-कारख़ाने और ए.सी. लगे बड़े-बड़े मॉल, दफ़्तर हैं उनपर भारी टैक्स लगाना चाहिए। अन्तरराष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी के एक आकलन के अनुसार दुनिया को जीवाश्म ईंधन (यानी पेट्रोल, डीज़ल, आदि) से हरित ऊर्जा (ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत जो कम प्रदूषण करते हैं) में संक्रमण के लिए सालाना लगभग 25 खरब डॉलर अतिरिक्त ख़र्च करना होगा। ऑक्सफ़ैम की ही एक अलग रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के सबसे अमीर 36 लाख करोड़पतियों और अरबपतियों पर 2 से 5 प्रतिशत का प्रगतिशील सम्पत्ति कर लगाकर सालाना यह 25 खरब डॉलर वसूला जा सकता है।

भारत में जीवाश्म ईंधन से हरित ऊर्जा में संक्रमण के लिए जो ख़र्च होगा उसे सबसे अमीर 1 प्रतिशत लोगों पर 2 प्रतिशत सम्पत्ति कर लगाकर 10 साल के भीतर हासिल किया जा सकता है। जनता के दबाव में तमाम देशों की सरकारें अगर अक्षय ऊर्जा का इस्तेमाल बढ़ाती भी हैं तो इसके लिए जो ख़र्च होता है वो जनता से अप्रत्यक्ष कर बढ़ाकर वसूला जाता है। मेहनतकश जनता की जेब पर डाका डालकर पूँजीपतियों को सौर ऊर्जा प्लाण्ट और पवन चक्की लगाने के लिए हज़ारों करोड़ रुपये सब्सिडी और कौड़ी के भाव ज़मीन दी जाती है। इसी साल अम्बानी और टाटा ने नये सौर ऊर्जा प्लाण्ट के लिए 1950 करोड़ रुपये सरकारी सब्सिडी के लिए टेंडर भरा है। एक ओर ये कम्पनियाँ तेल और कोयला का व्यापार करके पर्यावरण का विनाश करते हैं, वहीं दूसरी ओर पर्यावरण को बचाने के नाम पर हरित ऊर्जा में निवेश करते हैं और उससे भी ताबड़तोड़ मुनाफ़ा कमाते हैं। इसलिए पूँजीपतियों पर प्रगतिशील सम्पत्ति कर लगाकर जीवाश्म ईंधन से हरित ऊर्जा में जल्द से जल्द संक्रमण के लिए सरकार पर दबाव बनाना होगा। इसके अलावा कार्यस्थल पर गर्मी से बचने के लिए उपयुक्त वर्दी, दस्ताने, जूते, ठण्डा पानी, अच्छे हवादार कमरे, नियमित अन्तराल में ब्रेक, आराम करने की जगह और लू के दिनों में वेतन के साथ छुट्टी हमारी जायज़ माँग है। यह पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर उठायी जाने वाली वे जनवादी माँगें हैं, जो मौजूदा लुटेरी व्यवस्था को उसके असंभाव्यता बिन्दु पर ला सकती हैं। निश्चय ही, पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी की भूमिका निभाने वाली पूँजीवादी सरकारें ये जायज़ माँगें मानें इसकी गुंजाइश कम है। ऐसे में, मौजूदा व्यवस्था बेनक़ाब होगी, व्यापक जनता के सामने उसकी असलियत सामने आयेगी और उसका राजनीतिक संकट गहरायेगा।

आये दिन दुनियाभर के वैज्ञानिक और पर्यावरण विशेषज्ञ ठोस आँकड़ों के आधार पर यह चेतावनी दे रहे हैं कि दुनिया को विनाश से बचाने का समय निकलता जा रहा है। लेकिन इस महीने एक बार फिर सभी देशों के हुक्मरान दुबई में इकट्ठा हुए सीओपी-28 के मंच से जलवायु संकट पर छाती पीटने और घड़ियाली आँसू बहाने के लिए। पर्यावरण विनाश को रोकने के लिए कौनसा देश कितना आर्थिक योगदान करेगा, इस मुद्दे पर सम्मेलन में हुक्मरानों के बीच कुत्ताघसीटी चल रही है। दूसरी ओर 2023 आधिकारिक तौर पर इतिहास का सबसे गर्म वर्ष घोषित हो गया है। समय हमारे पास वाकई कम है। सवाल यह है कि क्या हम हाथ पर हाथ धरे धरती को विनाश की ओर बढ़ते देखते रहें? या आने वाली नस्लों को रहने योग्य धरती सौंपें और इसके लिए व्यापक जन समुदायों को जलवायु संकट और पर्यावरण विनाश के मुद्दे पर संगठित करें! हमें जनता की युगान्तरकारी और अजेय शक्ति पर भरोसा रखना चाहिए, व्यापक जनसमुदायों के बीच इस मसले पर वर्गीय दृष्टि से प्रचार करते हुए बताना चाहिए कि मौजूदा जलवायु संकट व पर्यावरणीय विनाश कोई स्वत:स्फूर्त हुई या प्राकृतिक चीज़ नहीं है, बल्कि मौजूदा मुनाफ़ाख़ोर पूँजीवादी व्यवस्था की पैदावार है। इसे नष्ट करके ही मेहनत और कुदरत दोनों की लूट का ख़ात्मा हो सकता है।

भीषण आर्थिक व राजनीतिक संकट से जूझता बंगलादेश

लेकिन क्रान्तिकारी विकल्प की ग़ैर-मौजूदगी में शासक वर्ग का दबदबा क़ायम

● आनन्द

हाल के कुछ वर्षों तक बंगलादेश की गिनती दुनिया की सबसे तेज़ी से उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में होती थी। साम्राज्यवादी मीडिया उसे नये एशियाई टाइगर के खिताब से नवाज़ा करता था। ज़ारा, एच एण्ड एम, टॉमी हिलफ़ाइगर, कैल्विन क्लेन, गैप और प्यूमा जैसी दैत्याकार बहुराष्ट्रीय रेडीमेड कपड़ा कम्पनियाँ बेहद कम मज़दूरी पर और अमानवीय परिस्थितियों में मज़दूरों से काम करवाने वाली बंगलादेश की कपड़ा फ़ैक्टरियों में कपड़े बनवाकर दुनियाभर के बाज़ारों में बेचकर अकूत मुनाफ़ा कूटती आयी हैं। लेकिन पिछले 2-3 सालों से बंगलादेश की अर्थव्यवस्था की हालत डावाँडोल नज़र आ रही है। वहाँ लगातार बढ़ती महँगाई और घटती आमदनी की वजह से आम लोगों की ज़िन्दगी के हालात इतने ख़राब हो चुके हैं कि उनके पास अब सड़कों पर उतरने के अलावा कोई रास्ता ही नहीं बचा है। गुज़रे साल के आख़िरी महीनों में वहाँ प्रचण्ड विरोध-प्रदर्शनों का सिलसिला जारी रहा।

इस आर्थिक संकट के साथ ही साथ बंगलादेश में एक राजनीतिक संकट भी जारी है क्योंकि वहाँ पिछले 15 सालों से सत्तासीन अवामी लीग की शेख़ हसीना सरकार ने सत्ता में बने रखने के लिए विपक्ष व जनान्दोलनों पर दमन का चाबुक चला दिया है और उसपर तमाम क़िस्म की पाबन्दियाँ लगा दी हैं। विपक्ष द्वारा गत 7 जनवरी को सम्पन्न हुए बंगलादेश के आम चुनावों का बहिष्कार करने की वजह से वहाँ बुर्जुआ जनवाद की विश्वसनीयता पर एक बहुत बड़ा सवालिया निशान खड़ा हो गया है। दूसरी ओर, इस आर्थिक व राजनीतिक संकट की परिस्थिति में उस देश पर अपनी-अपनी पैठ बनाने के लिए वहाँ अमेरिकी व चीनी साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच होड़ भी तेज़ होती दिख रही है।

लगातार गहराता आर्थिक संकट

कोरोना महामारी और यूक्रेन युद्ध की वजह से आपूर्ति श्रृंखलाओं के बाधित होने के चलते दुनिया के तमाम देशों की ही तरह बंगलादेश में भी लगातार बढ़ती महँगाई और घटती आमदनी की वजह से आम लोगों की आर्थिक बदहाली बढ़ती गयी है। पिछले कई महीनों से महँगाई की दर दो अंकों में, यानी 10 प्रतिशत से ऊपर रही है। ये हालात वहाँ व्यापक पैमाने पर भुखमरी जैसी स्थिति पैदा कर रहे हैं।

लेकिन कोरोना और यूक्रेन युद्ध बंगलादेश की आर्थिक बदहाली के महज़ तात्कालिक कारक हैं, जबकि वास्तविक दीर्घकालिक कारण बंगलादेश के समाज के राजनीतिक अर्थशास्त्र में निहित हैं। बंगलादेश की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की रीढ़ वहाँ का कपड़ा उद्योग है जिसमें तकरीबन 40 लाख लोग काम करते हैं। बेहद कम मज़दूरी की वजह से मज़दूरों का ख़ून चूसने वाली बंगलादेश की ये कपड़ा फ़ैक्टरियाँ रेडीमेड कपड़ों के उद्योग में विश्व की दिग्गज बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की पसन्दीदा सूची में आती हैं। यह इसी तथ्य से समझा जा सकता है कि रेडीमेड कपड़ों के निर्यात के मामले में बंगलादेश चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। वहाँ निर्यात से होने वाली कुल आय का 85 प्रतिशत कपड़ों के निर्यात से आता है। रेडीमेड कपड़ों के निर्यात पर टिकी होने के कारण बंगलादेश की अर्थव्यवस्था विश्व बाज़ार में रेडीमेड कपड़ों की माँग में होने वाले उतार-चढ़ाव पर बुरी तरह निर्भर रहती है। पिछले कुछ वर्षों में रेडीमेड कपड़ों के निर्यात में कमी आने की वजह से जहाँ एक ओर मज़दूरों की छँटनी हो रही और उनकी मज़दूरी में कटौती की जा रही है वहीं दूसरी ओर अर्थव्यवस्था में विदेशी मुद्रा भण्डार भी तेज़ी से सिकुड़ रहा है। इस वजह से वहाँ आवश्यक वस्तुओं के आयात के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा नहीं बची है। पिछले दो साल के दौरान बंगलादेश की मुद्रा टका का भी अमेरिकी डॉलर के मुक़ाबले 40 प्रतिशत अवमूल्यन हो गया है।

मज़दूरी बढ़ाने और अन्य माँगों को लेकर आन्दोलनरत बंगलादेश की गारमंट मज़दूर

बंगलादेश में पूँजीवादी विकास के मद्देनज़र बुनियादी अधिरचना में बेहतरी लाने के लिए सड़कों, पुलों, बन्दरगाहों और हवाई अड्डों के निर्माण के नाम पर प्रोजेक्ट पूरे करने के लिए बैंकों से जो क़र्ज़ लिये गये हैं उनकी अदायगी न होने की वजह से वहाँ का बैंकिंग क्षेत्र भी संकट से गुज़र रहा है। ग़ौरतलब है कि बैंकों से लिए जाने वाले इन क़र्ज़ों को लेने वालों में बड़ी संख्या सत्ताधारी अवामी लीग के क़रीबी पूँजीपतियों और बिल्डरों की है जो सत्ता से क़रीबी का फ़ायदा उठाकर क़र्ज़ की अदायगी नहीं कर रहे हैं जिसकी वजह से बैंकों के नॉन परफ़ॉर्मिंग एसेट्स में बढ़ोतरी हो रही है। इस प्रकार आर्थिक संकट की स्थिति भ्रष्टाचार की वजह से बद से बदतर हो रही है।

मज़दूरों की बग़ावत, राज्यसत्ता का दमन और राजनीतिक संकट

इस बदहाली के आलम में बंगलादेश के पूँजीवादी सत्ताधारियों ने मज़दूरों के सामने सड़कों पर उतरने के अलावा और कोई रास्ता नहीं छोड़ा था। पिछले साल अक्टूबर के महीने से ही वहाँ लाखों की संख्या में मज़दूर सड़क पर उतरने लगे थे। उसकी वजह से वहाँ की 4 हज़ार फ़ैक्ट्रियों में क़रीब 500 बन्द हो गयीं। मज़दूरों की मुख्य माँग थी कि उनकी मज़दूरी 8.3 हज़ार टका (क़रीब 6200 रुपये) से बढ़ाकर 23 हज़ार टका (17.5 हज़ार रुपये) की जाये क्योंकि लगातार बढ़ती महँगाई की वजह से उनका जीना दुश्वार हो गया है। आन्दोलन के दबाव में सरकार ने मज़दूरी बढ़ाकर 12.5 हज़ार टका करने का प्रस्ताव रखा, परन्तु मज़दूरों ने उसे ठुकरा दिया। उसके बाद सरकार ने अपने अपने पूँजीपरस्त और मज़दूर-विरोधी चरित्र के मुताबिक़ आन्दोलन को कुचलने के लिए भीषण दमन का सहारा लेना शुरू कर दिया। मज़दूरों के आन्दोलन को पुलिस के सहारे हिंसक तरीक़े से कुचलने के अलावा हज़ारों लोगों को गिरफ़्तार किया गया और विपक्ष के नेताओं को भी नहीं बख़्शा गया। सत्ताधारी अवामी लीग ने मज़दूरों की हड़ताल के लिए बेगम ख़ालिदा ज़िया के नेतृत्व वाले विपक्षी दल बंगलादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) को ज़िम्मेदार ठहराया। जबकि सच्चाई यह है कि बीएनपी एक दक्षिणपन्थी बुर्जुआ पार्टी है और वह भी मज़दूरों की कट्टर दुश्मन है। शेख़ हसीना के नेतृत्व वाली अवामी लीग की सरकार के जनविरोधी व तानाशाहाना रवैये के ख़िलाफ़ लोगों को लामबन्द करने के लिए वह इस्लामिक कट्टरपन्थ का सहारा ले रही है। ग़ौरतलब है कि बीएनपी का ज़मात-ए-इस्लामी के साथ गहरा ताल्लुक है जो एक इस्लामी कट्टरपन्थी संगठन है।

सरकार के दमन और तानाशहाना रवैये के मद्देनज़र बीएनपी ने गत 7 जनवरी को हुए आम चुनावों का बहिष्कार कर दिया। इस प्रकार सबसे बड़े विपक्षी दल द्वारा बहिष्कार किये जाने के बाद वहाँ चुनाव शेख़ हसीना को सत्ता में लाने की महज़ रस्म अदायगी बनकर रह गये। इन चुनावों में केवल 28 प्रतिशत मतदाताओं ने मतदान किया जो दिखाता है कि लोगों के बीच शेख़ हसीना सरकार की लोकप्रियता बेहद कम है। ग़ौरतलब है कि शेख़ हसीना पिछले 15 वर्षों से बंगलादेश की सत्ता पर क़ाबिज़ हैं और पिछले दो चुनावों में भी अवामी लीग पर आरोप लगते रहे हैं कि वह धाँधली के ज़रिये चुनाव जीतती है। अपनी घटती लोकप्रियता के आलम में भी सत्ता में बने रहने के लिए शेख़ हसीना ने इस बार विपक्षी दलों पर दमन का चाबुक चलाने का फैसला किया। चुनावों से ऐन पहले विपक्ष पर शान्ति भंग करने का आरोप लगाते हुए लाखों विपक्षी नेताओं और एक्टिविस्टों को जेल में ठूँस दिया गया। हालात ये हो गये कि बंगलादेश की जेलों में अब कोई जगह ही नहीं बची है। जेल में हुई प्रताड़ना की वजह से कई विपक्षी नेताओं की जान भी जा चुकी है।

बंगलादेश में जारी आर्थिक व राजनीतिक संकट के मद्देनज़र अपनी साम्राज्यवादी महत्वकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अमेरिकी व चीनी साम्राज्यवादी ताक़तों ने भी वहाँ अपनी दख़ल बढ़ायी है। ग़ौरतलब है कि शेख़ हसीना की अवामी लीग के चीन के साथ बहुत अच्छे सम्बन्ध हैं। पिछले एक दशकों के दौरान अवामी लीग के शासन के दौरान चीन ने वहाँ के बुनियादी ढाँचे को मज़बूत करने के लिए निवेश किया है और क़र्ज़ भी दिया है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि इस मदद का लाभ बंगलादेश की आम मेहनतकश जनता को नहीं बल्कि वहाँ के पूँजीपति वर्ग को ही मिल रहा है। अर्थव्यवस्था में मन्दी की स्थिति में चीन द्वारा उच्च ब्याज दर पर दिये गये क़र्ज़ अर्थव्यवस्था का संकट और बढ़ा सकते हैं। उधर अमेरिकी साम्राज्यवाद की क़रीबी बेगम ख़ालिदा ज़िया की बंगलादेश नेशनलिस्ट पार्टी से है। यही वजह है कि अमेरिकी साम्राज्यवादी बंगलादेश में विपक्ष के दमन और मानवाधिकारों के हनन पर बहुत चिल्ल-पों मचा रहे हैं। अमेरिका ने हाल में सम्पन्न हुए चुनावों की विश्वसनीयता पर भी सवाल उठाये हैं। कहने की ज़रूरत नहीं है कि दुनियाभर में तानाशाहों व निरंकुश सत्ताओं को शह देने वाले अमेरिकी साम्राज्यवादियों को आज अचानक बंगलादेश में लोकतंत्र के प्रति जो प्यार उमड़ रहा है उसका रिश्ता लोकतंत्र के प्रति उसकी प्रतिबद्धता से नहीं बल्कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मुनाफ़े के खेल में अग्रणी बने रहने की महत्वाकांक्षा से है।

आने वाले दिनों में बंगलादेश में आर्थिक संकट और गहराने ही वाला है क्योंकि चालू खाते का घाटा बढ़ता जा रहा है और भुगतान सन्तुलन की हालत खस्ता है। पूँजीपतियों द्वारा क़र्ज़ों की अदायगी न करने की सूरत में बैंकिंग क्षेत्र का संकट भी और बढ़ने वाला ही है। विश्व बाज़ार में उछाल की सम्भावना कम होने की वजह से निर्यात पर टिकी अर्थव्यवस्था के सामने संकट से उबरने की वस्तुगत सीमाएँ हैं। ऐसे में लोगों के जीवन में बेहतरी और उनकी आमदनी बढ़ने की कोई सम्भावना नहीं दिखती है। इस गहराते आर्थिक संकट की अभिव्यक्ति राजनीतिक संकट के गहराने के रूप में सामने आयेगी क्योंकि सत्ता में बने रहने के लिए और जन आक्रोश को कुचलने के लिए शेख़ हसीना की अवामी लीग सरकार का दमनतंत्र ज़्यादा से ज़्यादा निरंकुश होता जायेगा।

ऐसे में अगर इस समय बंगलादेश में कोई क्रान्तिकारी पार्टी होती तो इस चौतरफ़ा संकट के क्रान्तिकारी संकट बनने की दिशा में विकसित होने की सम्भावना का लाभ उठाकर क्रान्ति की दिशा में क़दम बढ़ाती। परन्तु दुनिया के तमाम देशों की ही तरह बंगलादेश में भी क्रान्ति की मनोगत ताक़त यानी क्रान्तिकारी पार्टी की ग़ैर-मौजूदगी की वजह से सम्भावित क्रान्तिकारी परिस्थिति का लाभ उठाया जा सकेगा, इसकी गुंजाइश फिलहाल काफ़ी कम नज़र आती है। बंगलादेश की स्थिति एक बार फिर दिखा रही है कि आज तथाकथित 'तीसरी दुनिया', यानी एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के कम विकसित उत्तर-औपनिवेशिक पूँजीवादी देश क्रान्तियों के हॉटस्पॉट बने हुए हैं; इन देशों में पूँजीवाद का संकट क्रान्ति की वस्तुगत परिस्थितियाँ तैयार कर रहा है, परन्तु इनको क्रान्ति में तब्दील करने के लिए ज़रूरी मनोगत ताक़तों को तैयार करना आज के दौर के सबसे बड़ी चुनौती और कार्यभार है।

भारत-कनाडा कूटनीतिक विवाद तथा भारतीय शासक वर्ग की राजनीतिक स्वतंत्रता का प्रश्न

● सनी

पिछले साल कनाडा ने भारत की सुरक्षा एजेंसियों पर कनाडा की ज़मीन पर राजनीतिक हत्याओं को अंजाम देने का आरोप लगाया था। इस मसले पर कनाडा के प्रधानमन्त्री ट्रूडो ने भारत सरकार को खरी-खोटी सुनाई जिसपर भारत ने भी जवाबी कार्यवाही करते हुए कनाडा के राजनायिकों की इम्यूनिटी भंग कर दी तथा कनाडा के अरोपों को बेबुनियाद बताया। यह मसला अभी दबा भी नहीं था कि अमेरिका ने भी भारत के अंडरकवर एजेण्ट द्वारा एक अमेरिकी नागरिक की हत्या करवाने के प्रयास का आरोप लगाया। भारत ने इस बार भी इसे निराधार बताया और इसे एक व्यक्ति की स्वतंत्र तौर पर की गयी हरकत बताया। एफबीआई चीफ ने इस घटना के बाद भारत का दौरा भी किया। भारत ने अमेरिका के ज़ोर देने के बाद भी कनाडा के प्रति अपनी तल्ख ज़ुबान बरकरार रखी है और यह साफ़ किया है कि वह किसी भी देश के दबाव में आकर अपनी विदेश नीति नहीं तय करता है। इस दौरान ही भारत ने अमेरिका के लठैत इजरायल के नरसंहार के ख़िलाफ़ भी यूएन में वोट किया। यह भारत के शासक वर्ग की राजनीतिक स्वतंत्रता की ही झलक है और साथ ही यह कनाडा विवाद भारतीय शासक वर्ग की राजनीतिक महत्वकांक्षाओं को दिखाता है। भारत भूटान, नेपाल सरीखे देशों के प्रति खुद एक साम्राज्यवादी शक्ति की तरह व्यवहार करता है तो वहीं यह विश्व साम्राज्यवाद में अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों का 'जूनियर पार्टनर' है। कनाडा में भारतीय सुरक्षा एजेंसियों ने वही कारनामे अंजाम देने चाहे जो यह बलूचिस्तान, नेपाल और अन्य देशों में बिना ऐसे कूटनीतिक विवाद के अंजाम देता आया है। अपने राजनीतिक शत्रुओं का सफ़ाया अमेरिका, चीन और रूस जैसे देश विदेशी ज़मीन पर अपनी धौंस पट्टी के दम पर से करते आये हैं लेकिन भारत के शासक वर्ग द्वारा बड़ी सामरिक शक्तियों की ज़मीन पर यह कदम उठाना मौजूदा विश्व परिस्थिति में उसकी राजनीतिक महत्वकाक्षाओं को ही दिखाता है। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण तौर पर यह भारतीय शासक वर्ग की राजनीतिक स्वतंत्रता को दिखलाता है और यह दिखलाता है कि भारत का पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद का दलाल नहीं है, जैसा कि लकीर की फ़कीरी करने वाले भारत के कई कठमुल्ला कम्युनिस्टों को लगता है।

इसके साथ ही भारत की विदेश नीति पर एक बार आम तौर पर नज़र मार लेना बेहतर होगा। यह चर्चा भारतीय शासक वर्ग के चरित्र पर सही समझ बनाने के लिए ज़रूरी है क्योंकि बहुतेरे क्रांतिकारी संगठन, समूह और कई स्वतंत्र बुद्धिजीवी भारतीय शासक वर्ग को साम्राज्यवादी पूँजी का दलाल बताते हैं। इनके विश्लेषण के अनुसार भारत का शासक वर्ग दलाल है और भारत के मज़दूर वर्ग का पहला कार्यभार राजनीतिक स्वतंत्रता का बन जाता है। यह विश्लेषण मज़दूर वर्ग की रणनीति और आम रणकौशल को ग़लत रुख दे देता है। इसके अनुसार, भारत के मज़दूर वर्ग को भारत के 'राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग' से मोर्चा बना लेना चाहिए, जिसमें तमाम छोटे कारखानेदार, धनी कुलक व फार्मर आदि आते हैं! हम मज़दूर अपने अनुभवों से जानते हैं कि यह कैसी मूर्खतापूर्ण बात है। लेकिन हमें सैद्धान्तिक तौर पर भी समझना चाहिए कि भारत का पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद का दलाल नहीं है।

भारत के पूँजीपति वर्ग का मुख्यतः चरित्र औद्योगिक वित्तीय है और मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र का 'क ख ग' भी जानने वाला यह जानता है कि यह वर्ग दलाल नहीं हो सकता है क्योंकि उसे बाज़ार की ज़रूरत होती है जबकि मुख्यत: व्यापारिक- नौकरशाह पूँजीपति वर्ग दलाल हो सकता है, क्योंकि उसे इससे मतलब नहीं है कि वह देशी पूँजीपति का माल बाज़ार में बेचतकर वाणिज्यिक मुनाफ़ा हासिल कर रहा है, या विदेशी पूँजीपति का माल बेचकर। लेकिन भारत के पूँजीपति वर्ग का चरित्र मुख्यत: वाणिज्यिक-नौकरशाह पूँजीपति वर्ग का नहीं है। यह, मुख्यत: और मूलत:, एक वित्तीय-औद्योगिक पूँजीपति वर्ग है।

इस प्रश्न पर लकीर की फ़कीरी दिखाने वाले तमाम लोग असल में भारतीय शासक वर्ग की राजनीतिक स्वतंत्रता के ठोस तथ्यों से आँख मूँदकर भारतीय शासक वर्ग को दलाल बताते हैं। परन्तु हम एक बार फिर ऐसे लोगों की आँखों में चुभने वाले उन तथ्यों को यहाँ रख रहे हैं।

आज़ादी के बाद ही सुएज़ नहर प्रोजेक्ट पर भारतीय शासक वर्ग ने साम्राजवादी शक्तियों के विरोध का निर्णय लिया था और मिस्र की नासर की राष्ट्रीय बुर्जुआ सत्ता द्वारा सुएज़ नहर के राष्ट्रीकरण का साथ दिया था। शीत युद्ध के दौरान गुट निरपेक्ष आंदोलन में भागीदारी से भारतीय शासक वर्ग ने अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता पर बल दिया। सोवियत-एशिया मैत्री संघ में जुड़ने से इंकार कर उसने सोवियत साम्राज्यवादी धुरी से भी समान राजनीतिक दूरी बनाये रखी। भारत-चीन युद्ध में अमेरिका द्वारा मदद के बदले वॉइस ऑफ अमरिका का दफ़्तर खोलने की शर्त को ठुकरा कर भारतीय शासक वर्ग ने यह पुनः जतला दिया था। लम्बे समय से पर्यावरण के लिए क्योटो से लेकर कोपेनहेगन तथा रियो सम्मेलनों में अमेरीका व अन्य विकसित देशों द्वारा भारत से पिछड़ी तकनोलॉजी के चलते होने वाले कार्बन उत्सर्जन को सीमाबद्ध करने की माँग की जा रही थी। साम्राज्यवादी देशों के द्वारा भारत और अन्य पिछड़े पूँजीवादी देशों पर 'पर्यावरण बचाने का बोझ' डालने के इस प्रयास पर भारतीय शासक वर्ग ने इनकी एक न मानी। आर्थिक तौर पर देखें तो निश्चित ही आज़ादी के पहले भारतीय पूँजीपति वर्ग विदेशी निवेश पर आंशिक तौर पर निर्भर रहा था। लेकिन अपने जन्म के शुरुआती कुछ वर्षों को छोड़कर, यह कभी भी पूर्णत: वाणिज्यिक पूँजीपति नहीं रहा था। आज़ादी के बाद तो कुल पूँजी निवेश में विदेशी पूँजी का हिस्सा दस प्रतिशत (कुल कैपिटल स्टॉक के प्रतिशत में) से घटकर दो प्रतिशत रह गया। आज़ादी के बाद से बजट घाटा, आयात प्रतिस्थापन और संरक्षणवाद की नीति भारतीय शासक वर्ग ने अपनायी। इस दौरान निजी पूँजीपति वर्ग को पूँजी संचय करने दिया गया, साम्राज्यवादी पूँजी से प्रतिस्पर्धा से संरक्षण दिया गया और अवरचनागत ढाँचे को राज्य ने सम्भाल लिया। इस तरह विदेशी पूँजी पर आंशिक आर्थिक निर्भरता के बावजूद भारतीय शासक पूँजीपति वर्ग ने अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता बरकरार रखी और हमेशा साम्राज्यवाद के आन्तरिक अन्तरविरोधों का लाभ उठाकर साम्राज्यवादी देशों से मोलभाव किया। नेहरू के "समाजवाद" की यही हक़ीक़त थी। 90 के दशक में जब भारतीय पूँजीपति वर्ग का पब्लिक सेक्टर ढाँचे में मुनाफ़ा संकुचित होने लगा और जब यह अपने पैरों पर खड़ा हो गया तथा विदेशी पूँजी से प्रतिस्पर्धा में सक्षम हो चुका था तो पब्लिक सेक्टर का ढाँचा त्याग दिया गया।

भारतीय वर्ल्ड बैंक, आई एम एफ से यानी अमेरीकी साम्राज्यवादी धुरी से वित्तीय मदद लेता रहा है जिसमें उसे इन वित्तीय संस्थाओं की कुछ शर्तों को भी स्वीकार करना पड़ता है। अमेरिका के साथ कई व्यापारिक और सामरिक सौदे भारत ने किये हैं। अमेरिका के साथ भारत क्वाड और आईटूयूटू का भी हिस्सा है जिसमें इज़रायल, यूनाईटेड अरब एमिरेट्स और अमेरिका शामिल हैं।

लेकिन साथ ही, अमेरिका के विरोध को धता बताते हुए भारत ने रूस से सामरिक और तेल के लिए व्यापार मजबूत किया है। रूस के एस-400 मिसाईल सिस्टम लेने पर अमेरिका ने काफी विरोध किया परन्तु भारत इसपर अडिग रहा। वहीं भारत आर्मेनिया को हथियार बेच रहा है जो रूस की सम्राज्यवादी नीति के अनुरूप नहीं है।वैसे तो चीन को "लाल आँख दिखाने" में भले ही मोदी सरकार असफल रही हो परन्तु चीन की बेल्ट रोड इनिशियेटिव का चीन के ज़ोर देने पर भी हिस्सा नहीं बनी और दक्षिण चीन सागर में चीन के विरोधियों के साथ 'क्वाड' की सामरिक कवायदों में शामिल हुई। लेकिन दूसरी तरफ़ भारत चीन के साथ ब्रिक्स में शामिल है और भारत में चीनी पूँजी के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्र भी बनाये जा रहे हैं। भारत चीन के नेतृत्व में बने शंघाई कोऑपरेशन ओर्गनाईज़ेशन का सदस्य भी है।

इन तथ्यों से यह उजागर हो जाता है कि भारतीय शासक वर्ग ने आज़ादी के बाद से ही साम्राज्यवादी शक्तियों के अलग धड़ों के साथ रिश्तों को चलाने के मामले पतली रस्सी पर चलते हुए नट की तरह संतुलन बनाये रखा है। ये संबंध भारत के शासक वर्ग की राजनीतिक स्वतंत्रता को ही पुष्ट करते हैं। आज के दौर में भी, भारतीय शासक वर्ग किसी भी एक साम्राज्यवादी धुरी के साथ सम्बद्ध नहीं है बल्कि अमरीकी धुरी और रूस-चीन धुरी के साथ संतुलित दूरी बनाकर अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता कायम रखता है। किसी दौर में यह एक धुरी के पक्ष में अधिक झुकाव रखता हुआ प्रतीत हो सकता है परन्तु लम्बी दूरी में यह अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता निरन्तर बनाये रखता है। भारतीय शासक वर्ग साम्राज्यवादी धड़ों के बीच अन्तरविरोध का फ़ायदा उठाकर ही अपने लिए रियायतें हासिल करता है। एक तरफ़ यह रूस- चीन धुरी तथा अमेरीकी धुरी पर वित्तीय तथा तकनोलॉजिकल मदद के लिए निर्भर है तो दूसरी तरफ़ यह अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता बनाये रखते हुए इन देशों की उन नीतियों का विरोध करता है जो इसके हितों के विरुद्ध होती हैं और इस मामले में यह साम्राज्यवादी शक्तियों की चेतावनियों के बावजूद अपनी नीति ही लागू करता है। निश्चित ही कुछ मसलों में इसे साम्राज्यवादी शक्तियों के आगे झुकना पड़ता है और उनकी शर्तें स्वीकार करनी पड़ती हैं परन्तु यह भारतीय शासक वर्ग के साम्राज्यवाद के कनिष्ठ सहयोगी होने को ही पुष्ट करती हैं और हर ऐसी शर्त को मानने पर भारतीय शासक वर्ग लेन-देन के समझौतों के तहत कुछ हासिल भी करता है।

भारत-कनाडा विवाद भी भारत के शासक वर्ग के उपरोक्त चरित्र को ही स्पष्ट करती है और भारत के शासक वर्ग को साम्राज्यवाद का दलाल बताने वाले लोगों के बौद्धिक दिवालियेपन पर मोहर भी लगाती है।

गुड़गाँव में किशोर घरेलू कामगार के साथ क्रूरता का एक और मामला

(पेज 4 से आगे)

हों उनसे और उनके राज में न्याय की उम्मीद करना हमारी बेवकूफ़ी ही होगी। महिलाओं के बलात्कारियों व यौन उत्पीड़कों के समर्थकों के पक्ष में इनके द्वारा की जाने काली रैलियाँ, साम्प्रदायिक बलात्कारियों की जेल से ज़मानत, स्त्री-विरोधी बयानों से समाज के सड़े हुई पितृसत्तात्मक तत्वों को ही बल मिलता है। यानी जिन लोगों की फ़ासीवादी विचारधारा में बलात्कार को विरोधियों पर विजय पाने के हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता हो, जिस पार्टी का इतिहास ही बलात्कारियों को संरक्षण देने का रहा हो क्या उनके कार्यकाल में हम स्त्रियों के लिए न्याय, सम्मान, सुरक्षा और आज़ादी की उम्मीद कर सकते हैं?

वैसे तो जब तक मुनाफ़ा-आधारित पूँजीवादी व्यवस्था क़ायम है, तब तक मेहनतकशों के बर्बरतम शोषण के विभिन्न रूपों को रोकना सम्भव नहीं है। घरेलू कामगार भी समूची मज़दूर आबादी का ही अंग हैं। इन सब पहलुओं से यह बात तो साफ़ हो जाती है कि स्त्री मुक्ति की लड़ाई किसी सुधारवादी दायरे या नारीवादियों द्वारा पुरुष-विरोधी नारों से या महज़ क़ानून बना देने और उसे लागू करवाने तक सीमित कर देने से कतई आगे नहीं बढ़ सकती। निश्चित ही, आज घरेलू कामगारों के अधिकारों के लिए एक क़ानून की लड़ाई बेहद ज़रूरी है। लेकिन यह महज़ अपने जनवादी अधिकारों की लड़ाई है, अपनी मुक्ति का क्षितिज नहीं। घरेलू कामगारों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक, संगठित होकर अपने अधिकारों को हासिल करने का रास्ता तो अपनाना ही होगा। इसी दौरान अर्जित अधिकारों को क़ायम रखने, मज़बूत करने और उसे जड़मूल से ख़त्म करने के लिए स्त्री मुक्ति की लड़ाई एक समुचित वर्ग चेतना की माँग करती है। समूचे पूँजीवादी निज़ाम के विरुद्ध संघर्ष के बिना स्त्री-मुक्ति की लड़ाई मुकाम पर नहीं पहुँच सकती।

घरेलू कामगारों को शुरुआत करने के लिए अपनी ज़रूरी माँगों को उठाना और संघर्ष के लिए संगठित होना बेहद ज़रूरी है। मौजूदा घटना के मद्देनज़र निम्न माँगों पर संघर्ष को संगठित किया जाना चाहिए :

दोषी परिवार को जल्द से जल्द और सख़्त से सख़्त सज़ा मिले।

अनौपचारिक कामगारों के लिए अलग लेबर एक्सचेंज का गठन किया जाए, जिसमें कि उनका पंजीकरण हो सके और किसी भी व्यक्ति को घरेलू कामगार की ज़रूरत पड़ने पर इस एक्सचेंज द्वारा घरेलू कामगार मुहैया कराये जाये।

न सिर्फ़ घरेलू कामगारों की पहचान और पंजीकरण को सुनिश्चित किया जाये, बल्कि उनके नियोक्ताओं की भी जाँच के साथ ही उनका भी पंजीकरण किया जाये।

उनके लिए एक अलग विशेष घरेलू कामगार क़ानून बनाया जाये जिसमें कि उनकी न्यूनतम मज़दूरी, कार्यदिवस व साप्ताहिक छुट्टी के प्रावधानों समेत उनके सम्मान, घरों में उनके साथ बराबरी के बर्ताव और उनके रोज़गार व उनकी सुरक्षा को सुनिश्चित किया जाये।

तमाम सरकारें और प्रशासन बिना किसी देरी के हर जिले के हर शहर में स्थानीय शिकायत समिति (एल.सी.सी.) स्थापित करें।

कश्मीर के हालात और मोदी सरकार के दावों की सच्चाई

● वारुणी

370 के हटाए जाने के बाद मोदी सरकार द्वारा कश्मीर से पूरी तरह आतंकवाद ख़त्म करने के दावे किये जा रहे थे। 370 के तहत कश्मीर को मिले विशेष राज्य का दर्जा छीने हुए आज चार साल बीत चुके हैं। आतंकवाद ख़त्म करने, कश्मीर में "विकास पुत्र" के जन्मने, और कश्मीर के भारत का अभिन्न अंग बनने के तमाम दावे हवा में ही लटके हुये दिख रहे हैं। अभी हाल ही में कश्मीर के पुंछ जिले में सेना के दो वाहनों पर हमला हुआ जिसमें चार सैनिकों की मौत हो गयी और तीन घायल हो गए। आतंकवाद पर कितना काबू पाया गया है इसके बारे में तो पता नहीं, लेकिन एक बात तय है कि कश्मीर में आतंकवाद के नाम पर बेगुनाहों के कत्ल-ए-आम अभी भी बदस्तूर जारी है। पुंछ की इस घटना के बाद सेना द्वारा घाटी में संदिग्ध लोगों की पहचान का सिलसिला शुरू हुआ और पूछताछ के नाम पर क़रीब 8 लोगों को सेना ने अपनी हिरासत में ले लिया। हिरासत में लिये गये लोगों में से तीन लोगों की सेना की हिरासत में ही मौत हो गयी। बाकी पांच लोगों का अभी अस्पताल में इलाज चल रहा है। इस घटना का वीडियो सोशल मीडिया पर भी वायरल हुआ जिसमें यह साफ़ दिखाई दे रहा है कि कुछ सेना के जवान हिरासत में लिये गये लोगों को बेहद अमानवीय तरीक़े से प्रताड़ित करने का काम कर रहे हैं। मृतक के परिवार वालों ने भी बताया कि उन तीन पुरुषों के शवों पर गंभीर यातना के चिन्ह मौजूद हैं। सिर्फ़ शक के बिना पर सशस्त्र बलों द्वारा लोगों को उनके घरों से उठा लिया गया और ऐसी अमानवीय यातनाएं दी गयीं कि उन नागरिकों की हिरासत में ही मृत्यु हो गयी। यही है कश्मीर के सूरत-ए-हाल जहाँ सेना की हिरासत में हत्या हो जाना, लोगों का अपने घरों से गुम हो जाना, फ़र्ज़ी एनकाउंटर में मारा जाना एक आम बात हो चुकी है। इस घटना के बाद से इलाक़े के लोगों में काफ़ी रोष है। ज्ञात हो कि मृत लोगों में से एक ख़ुद बीएसएफ़ के जवान का बेटा था, उसके परिजनों का कहना था कि जब भारतीय सेना के प्रति वफ़ादार होते हुए भी उन्हें और उनके परिवार को नहीं बख्शा गया तो बाक़ी नागरिकों की क्या स्थिति होती होगी, यह अकल्पनीय है।

कश्मीर में हिरासत में हत्या हो जाना, सुरक्षा बलों द्वारा एनकाउंटर किया जाना, लोगों का अगवा कर लिया जाना, पेलेट बंदूकों से बच्चों को अंधा बना दिया जाना, बिना सुनवाई के जेलों में सड़ने छोड़ दिया जाना, सुरक्षा बलों द्वारा औरतों के साथ बलात्कार किया जाना - इन तमाम चीज़ों का सिलसिला लंबे समय से जारी है। कश्मीर की कितनी ही पीढ़ियों ने भारतीय राज्य का यह अमानवीय खूनी चेहरा देखा है। कश्मीरी अवाम के स्मृति पटल पर यह दाग़ तब से अंकित है जब से भारतीय राज्यसत्ता ने अफस्पा जैसे काले कानून को लागू किया और सुरक्षा बलों द्वारा कश्मीरी अवाम पर अत्याचार के सिलसिले शुरू हुए। लोगों के ज़ेहन में भारतीय राज्य के प्रति नफ़रत के बीज बोने के लिए ज़िम्मेदार खुद भारतीय राज्य और यहाँ की सेना है। वरना वही कश्मीरी जनता जिसने 1948 में भारतीय सेना का अपनी धरती पर फूलों से स्वागत किया था, वह क्यों आज उससे उतनी ही गहरी नफ़रत करती है?! पुंछ की घटना इस बात का ताज़ा उदाहरण है कि किस प्रकार सेना को अफस्पा कानून के तहत जिस तरह की छूट मिली है, उससे भारतीय सैनिकों को मानवाधिकारों का उल्लंघन करने की पूरी आज़ादी मिली हुई है और इस आधार पर निर्दोषों की हिरासत में हत्याओं को, औरतों के बलात्कारों को और फर्ज़ी एनकाउंटर को सही ठहराया जाता रहा है। इस क़ानून के तहत नागरिक अदालतों में सेना के जवानों पर कोई सुनवाई नहीं हो सकती, इसके लिए विशेष रूप से दोषी सैनिकों पर मुक़दमा चलाने के लिए संघीय मंजूरी की आवश्यकता होती है। लेकिन आज तक हुई तमाम घटनाओं में सेना के दोषी जवानों पर कोई कारवाई कभी नहीं हुई है। कुनान पोशपोरा को कौन भूल सकता है! इस प्रकार की इतनी वारदातें हो चुकी है कि अब भारतीय राज्यसत्ता भी इसे नहीं झुठला सकती है।

अभी हाल ही में, बीते 2020 के साल में भारतीय सेना द्वारा राजौरी के तीन बेगुनाह नागरिकों को फर्ज़ी मुठभेड़में मार डाला गया। पूरी घटना में उन निर्दोषों को इस तरह चित्रित किया गया जैसे वो कोई उग्रवादी थे लेकिन जाँच से पता चला कि यह सच नहीं था। लोगों में इस बात को लेकर काफ़ी गुस्सा था, तभी भारतीय सेना ने अपनी आंतरिक अदालत में इस ग़लती को स्वीकार कर दोषी अधिकारी को आजीवन कारावास की सज़ा सुनाई लेकिन कुछ ही महीनों बाद उस अधिकारी की सजा को निलंबित कर दिया गया। ऐसे विश्वासघात और अन्याय के कई दंश कश्मीरी कौम और अवाम झेल चुकी है। पुंछ में हुई हत्या के मसले पर लोगों में व्याप्त रोष को शांत करने के लिए मोदी सरकार द्वारा मृतक के परिवार को सरकारी नौकरी और मुआवज़े की राशि देने की बात की जा रही है लेकिन न्याय के नाम पर लोगों को कुछ हासिल नहीं होने वाला। यातना के निशानों की मौजूदगी के बावजूद और वीडियो में यातना देने की स्पष्ट घटना दिखाई देने के बावजूद जो प्राथमिकी दर्ज़ की गयी है वह अज्ञात लोगों के नाम से दर्ज़ की गयी है ताकि दोषियों पर कोई ठोस केस ना बन सके। घटना ज़्यादा तूल ना पकड़े, इसके लिए घाटी की इण्टरनेट सेवाएँ बन्द कर दी गयीं हैं और लोगों पर कई तरह की पाबन्दियाँ लगा दी गयी है। लोगों के मुँह पर ताले जड़ने के बाद मोदी सरकार का कहना है कि घटना के बाद स्थिति सामान्य है, पुलिस द्वारा उचित करवाई की जा रही है और चिन्ता की कोई बात नहीं है!

कश्मीरी कौम से भारतीय शासक वर्ग के विश्वासघात को जारी रखते हुए और एक नये मुकाम पर पहुँचाते हुए मोदी सरकार द्वारा 370 के हटाए जाने के बाद से ही मोदी सरकार इसी तरह की बात कर रही कि विशेष राज्य के दर्ज़े को हटाए जाने के बाद घाटी में चारों तरफ़ शांति बहाल है और कश्मीर के हालात सामान्य है। लेकिन असलियत यह थी कि किसी प्रकार के प्रतिरोध के खड़ा होने से पहले ही मोदी सरकार ने पूरी घाटी को छावनी में तब्दील कर दिया था, लंबे समय तक इंटरनेट सेवाओं पर पाबंदी लगा दी थी, लंबे समय तक तालाबंदी जारी रखी थी और इस प्रकार मोदी सरकार द्वारा कश्मीर में शांति बहाल की गयी थी! आम जनता इस फ़ैसले के ख़िलाफ़ आज भले ही सड़कों पर नहीं है लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उसके अन्दर इस बात को लेकर रोष मौजूद नहीं। असल में मोदी सरकार की कश्मीर से विशेष राज्य का दर्जा छीन लिये जाने और उन्हें केन्द्र शासित प्रदेश में तब्दील किये जाने से लोगों में काफ़ी गुस्सा है। दूसरी तरफ पुंछ जैसी वारदातें लोगों की भारतीय राज्यसत्ता से नफ़रत और अलगाव को और बढ़ा रही है। कश्मीर में इस अलगाव का फ़ायदा कुछ इस्लामिक कट्टरपंथी आतंकी संगठनों को ही मिलता है। घाटी में किसी अन्य विकल्प को ग़ैर मौजूदगी में कुछ कश्मीरी नौजवान अन्याय के ख़िलाफ़ अपनी नफ़रत को अभिव्यक्ति देने के लिए इन आतंकी समूहों की ओर रुख़ करते हैं।

कश्मीर में 370 को हटे हुए चार साल बीत गये हैं। कश्मीर की हालत और बद से बदतर ही हो रही है। कश्मीर के साथ हो रहे इस अन्याय के लिए ज़िम्मेदार सिर्फ़ भाजपा सरकार ही नहीं है बल्कि कश्मीरी अवाम के साथ ऐतिहासिक अन्याय का यह सिलसिला नेहरू के समय से ही शुरू हो चुका था जब नेहरू सरकार कश्मीर में करवाए जाने वाले अपने जनमत संग्रह के वादे से मुकर गयी और कश्मीर के अन्दर भारतीय राज्यसत्ता द्वारा कौमी दमन किया गया। तब से कश्मीर के लोगों के साथ कई प्रकार के विश्वासघात किये गये। भाजपा सरकार ने राष्ट्रीय दमन की इसी नीति को अपने चरम परिणति तक पहुँचाने का काम किया है। अब तो "न्याय के मंदिर" यानी सुप्रीम कोर्ट ने भी कश्मीर के साथ हुए इस ऐतिहासिक अन्याय को ही सही ठहराने का काम किया और 370 के हटाए जाने के फ़ैसले पर अपनी "न्यायसंगत" मुहर लगा दी है।

कई लोग कश्मीर के इस प्रकार भारत का "अभिन्न अंग" बनने पर जश्न मनाते हैं लेकिन हमें सोचना होगा कि क्या कश्मीर हमारे लिए महज़ ज़मीन का एक टुकड़ा है, या कि कश्मीर वहाँ के लोगों से बना है? हमें सबसे पहले यह समझना होगा कि कश्मीर सबसे पहले कश्मीरी लोगों का है और कोई भी कौम अपना फैसला खुद लेती है। और यदि कश्मीरी अवाम आज भी अपनी ही जगह ज़मीन पर बिछी कटीली तारों के पीछे हर मोड़ पर अपनी पहचान साबित करते हुए और फ़ौजी बूटों के तले पिसते हुए, अनगिनत अन्यायों और असीमित अत्याचारों को सहते हुए मौजूद है तो निश्चित है कि वह हार नहीं मानेगी और लड़ना नहीं छोड़ेगी। कोई भी दमित कौम कभी लड़ना नहीं छोड़ती है। सर्वहारा वर्ग बड़े से बड़े राज्य के पक्ष में है और कौमी सरहदों को समाप्त करना चाहता है। लेकिन बड़े से बड़ा भारतीय राज्यों सभी कौमों की आपसी सहमति से बनना चाहिए और सफलतापूर्वक सबकी आपसी सहमति से ही बन भी सकता है। ज़ोर-ज़बर्दस्ती, कौमी दमन और जनवाद को तार-तार कर यह सम्भव नहीं है। हर राष्ट्र को बिना शर्त आत्मनिर्णय का अधिकार मिलना उसका एक बुनियादी राजनीतिक जनवादी अधिकार है।

जिन्हे लगता है कि कश्मीर में शान्ति बहाल हो चुकी है वे बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी में है क्योंकि जहाँ अन्याय है वहाँ शान्ति नहीं हो सकती है। और यदि कश्मीरी कौम अपनी हक़ की लड़ाई के लिये संघर्षरत है तो हमें भी कश्मीर की जनता के आत्मनिर्णय के अधिकार का बिना शर्त समर्थन करना चाहिए। यह सवाल हिन्दू-मुसलमान का सवाल है ही नहीं। यह कश्मीरी कौम का सवाल है जिसमें हिन्दू-मुसलमान, दोनों ही शामिल हैं। यह जनता की जायज़ माँग है कि कश्मीर में राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के अधिकार को सुनिश्चित करने वाला जनमत संग्रह करवाया जाय। कश्मीर के राष्ट्रीय दमन को ख़त्म करने की पहली तात्कालिक माँग यह बनती है कि कश्मीर से सैन्य तानाशाही को समाप्त किया जाय, सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम को हटाया जाय, जिसे किसी भी जनवादी पैमाने पर सही नहीं ठहराया जा सकता। किसी भी कौम को फ़ौजी बूटों तले दबाकर ज़बरदस्ती देश के एक हिस्से के रूप में एकीकृत करके नहीं रखा जा सकता। सर्वहारा वर्ग सभी कौमों की आपसी सहमति के आधार पर एक एकीकृत राज्य की हिमायत करता है, किसी भी कौम के साथ ज़ोर-ज़बर्दस्ती के आधार पर नहीं। यदि हम इस दमन का समर्थन करते हैं तो हम स्वयं अपना दमन करने का भी लाईसेंस शासक वर्ग और उसकी राज्यसत्ता को प्रदान करते हैं।

मोदी सरकार के दस साल और राज्यसत्ता का फ़ासीवादीकरण

(पेज 24 से आगे)

रूप को बनाये रखना उनके लिये अधिक फ़ायदेमन्द है क्योंकि यह अधिक वर्चस्वकारी है और पूर्ण रूप से प्रभुत्व पर आधारित नहीं है। इसमें कोई दिक़्क़त उन्हें इसलिए भी नहीं है क्योंकि नवउदारवाद के दौर में बुर्जुआ जनवाद और न्याय जैसी चीज़ों की अन्तर्वस्तु इतनी क्षरित और खोखली हो चुकी है कि उसके रूप के क़ायम रहते वो सबकुछ कर सकते हैं जो उन्हें करना है! साथ ही, फ़ासीवादी शक्तियों का सत्ता से कई बार हट हो जाना सम्भव होता है, लेकिन दीर्घकालिक पूँजीवादी संकट के दौर में फ़ासीवादी ताक़तें हमेशा अधिक आक्रामकता के साथ सत्ता में लौटती हैं, क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे में पूँजीपति वर्ग के पास यही विकल्प बचा होता है। ऐसे में, जब फ़ासीवाद सत्ता से बाहर भी होता है, तो वह जर्मनी में हिटलर के नात्सी या इटली में मुसलिनी के फ़ासिस्ट उभार की तरह नष्ट नहीं हो जाता। वह समाज और राजनीति में अपनी पकड़ बनाये रखता है, मज़दूरों और मेहनतकशों तथा अल्पसंख्यकों के लिए शासक वर्ग की समानान्तर सत्ता का काम करता है। वजह साफ़ है : दीर्घकालिक संकट के दौर में, फ़ासीवाद पूँजीपति वर्ग के लिए एक सतत् अनिवार्यता है।

उपरोक्त पूरी बात को समझना इसलिए ज़रूरी है क्यूँकि यह फ़ासीवाद को हराने की रणनीति से जुड़ा है। केवल चुनाव के ज़रिये फ़ासीवाद को हराने का सपने देखने वाले लोगों के लिए इस सच्चाई को समझना बेहद ज़रूरी है। दूसरी बात, यह उन लोगों के लिए भी महत्वपूर्ण है जिन्हें लगता है कि फ़ासीवाद भारत में अभी नहीं आया है और यह केवल तभी आ सकता है जब यहाँ भी जर्मनी और इटली की तरह आपवादिक क़ानून के ज़रिये बुर्जुआ जनवाद को भंग किया जायेगा।

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 17

अध्याय – 15

पूँजी का संचय

● अभिनव

हमने अब तक देखा है कि पूँजीवादी उत्पादन का पहला चरण होता है मुद्रा की एक निश्चित मात्रा के रूप में मूल्य की एक निश्चित मात्रा का पूँजी में तब्दील होना। इसका अर्थ होता है इस मुद्रा का बाज़ार में श्रमशक्ति नामक विशिष्ट माल और उत्पादन के साधनों के साथ विनिमय। दूसरा चरण होता है उत्पादन का जो कि संचरण के क्षेत्र से अलग उत्पादन के स्थान पर होता है। इसमें उत्पादन के साधन माल का रूप ग्रहण करते हैं, जिनका मूल्य उत्पादन के साधनों व श्रमशक्ति के मूल्य से ज़्यादा होता है। यानी उत्पादन के फलस्वरूप उत्पादित उत्पाद का मूल्य शुरू में लगायी गयी पूँजी के मूल्य से ज़्यादा होता है। इसमें शुरू में लगायी गयी पूँजी के मूल्य के अलावा बेशी मूल्य भी शामिल होता है, जो मज़दूर द्वारा दिये गये श्रम के द्वारा पैदा किये गये नये मूल्य का एक हिस्सा होता है। नये मूल्य का दूसरा हिस्सा होता है मज़दूरी। मज़दूर पहले अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा करता है और फिर उसके ऊपर बेशी मूल्य पैदा करता है। इसके बाद पूँजीवादी उत्पादन की समूची प्रक्रिया का तीसरा चरण आता है जिसमें कि उत्पादित मालों को फिर से संचरण के क्षेत्र में डाला जाता है, यानी उन्हें बाज़ार में बेचा जाता है। उन्हें बेचना, मुद्रा में परिवर्तित करना या उनका वास्तवीकरण करना, और फिर इस मुद्रा को वापस पूँजी में तब्दील करना और इस प्रक्रिया को बार-बार दुहराना अनिवार्य होता है। इसी समूची प्रक्रिया को हम **पूँजी का संचरण** (circulation of capital) कहते हैं।

पूँजी का संचय वास्तव में वह प्रक्रिया होती है जिसमें कि पूँजीपति बेशी मूल्य के एक हिस्से को अपने उपभोग के लिए इस्तेमाल करने के बजाय उसे वापस उत्पादन में लगाता है। इस प्रकार वह उत्पादन को विस्तारित पैमाने पर दुहराता है। मार्क्स विश्लेषण के इस चरण की शुरुआत करने से पहले स्पष्ट कर देते हैं कि यहाँ पर हम कुछ चीज़ों को मानकर चलेंगे क्योंकि उससे पूँजी के संचय की प्रक्रिया पर अपने आप में कोई असर नहीं पड़ता है। पहली बात हम यह मानकर चलेंगे कि पूँजीपति अपने मालों को सफलतापूर्वक बेच लेता है। हम जानते हैं कि आम तौर पर यह प्रक्रिया सामान्य रूप में नहीं चलती। कभी पूँजीपति अपना पूरा माल नहीं बेच पाता तो कभी उसे आंशिक तौर पर नहीं बेच पाता। लेकिन संचरण के क्षेत्र में होने वाली इन प्रक्रियाओं का विश्लेषण बाद में किया जा सकता है। वे विश्लेषण और निर्धारण का अलग स्तर हैं और बेशी मूल्य के उत्पादन और उनके पूँजी में तब्दील होने की प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए हम उस स्तर पर होने वाले परिवर्तनों को नियतांक मानकर चलते हैं। यह सामान्य वैज्ञानिक पद्धति है। मिसाल के तौर पर, गुरुत्वाकर्षण की शक्ति का आकलन करने के लिए पहले हम वायु द्वारा होने वाले घर्षण को शून्य मान लेते हैं ताकि शुद्ध रूप से गुरुत्वाकर्षण की शक्ति को समझ सकें। जब हम यह कर लेते हैं तब हम गुरुत्व के प्रभाव में गिर रही वस्तु पर अन्य बलों के असर का आकलन करते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो न तो गुरुत्वाकर्षण को समझा जा सकता है और न ही अन्य बलों के प्रभाव को समझा जा सकता है।

इसी प्रकार मार्क्स बेशी मूल्य के पूँजीपति वर्ग के अलग-अलग हिस्सों में विभाजन के पहलू को भी अभी नज़रन्दाज़ करके चलते हैं क्योंकि जब हम समूचे पूँजीपति वर्ग की बात करते हैं तो इस विभाजन से बेशी मूल्य के विनियोजन व उसके पूँजी में तब्दील होने की प्रक्रिया में अपने आप में कोई असर नहीं पड़ता। हालाँकि औद्योगिक पूँजीपति को अपने द्वारा विनियोजित बेशी मूल्य को भूस्वामी पूँजीपति, वित्तीय पूँजीपति व वाणिज्यिक पूँजीपति के साथ साझा करना पड़ता है, मगर पूँजी संचय की प्रक्रिया का अध्ययन करने में अपने आप में इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता है और हम यह मानकर चल सकते हैं कि औद्योगिक पूँजीपति समूचे पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधि है और इस रूप में ही वह बेशी मूल्य का प्रत्यक्ष और प्राथमिक विनियोजन करने का काम करता है।

इसलिए मार्क्स स्पष्ट करते हैं :

> "जिस हद तक संचय वास्तव में होता है, हम यह मान सकते हैं कि पूँजीपति अपने मालों को बेचने में, और उनसे झड़कर उसकी जेब में गिरने वाली मुद्रा को पूँजी में तब्दील करने में सफल रहा है। इसके अलावा, बेशी मूल्य का विभिन्न खण्डों में विभाजन न तो बेशी मूल्य की प्रकृति को प्रभावित करता है और न ही उन स्थितियों को जिनके अन्तर्गत यह बेशी मूल्य संचय की प्रक्रिया में एक तत्व बनता है।...इसलिए संचय की अपनी प्रस्तुति में हम उससे ज़्यादा कोई कल्पना करके नहीं चल रहे हैं जिसकी कल्पना स्वयं संचय की वास्तविक प्रक्रिया करती है।...इसलिए इस प्रक्रिया का एक सटीक विश्लेषण यह माँग करता है कि हम फिलहाल उन सभी परिघटनाओं को नज़रन्दाज़ करके चलें जो इसकी आन्तरिक प्रणाली को छिपाने का काम करती हैं।" (कार्ल मार्क्स. 1990. *पूँजी*, *खण्ड*-1, पेंगुइन बुक्स, लन्दन, पृ. 710)

यानी, हम पूँजीवादी व्यवस्था में मालों के ख़रीदे-बेचे जाने की प्रक्रिया में मौजूद अराजकता और बेशी मूल्य के उद्यमी मुनाफ़ा, वाणिज्यिक मुनाफ़ा, लगान और ब्याज़ में बँटवारे को फिलहाल नज़रन्दाज़ करके चलेंगे, ताकि हम पूँजी संचय की प्रक्रिया की एक सटीक समझदारी बना सकें। इसके बाद ही हम उपरोक्त कारकों के पूँजी संचय की समूची प्रक्रिया पर पड़ने वाले असर को समझ सकते हैं।

सबसे पहले हमें जिस प्रक्रिया को समझना है वह है **पुनरुत्पादन की सामान्य प्रक्रिया**, जो किसी भी उत्पादन पद्धति में होती है, चाहे वह पूँजीवादी हो, सामन्ती हो या फिर दास प्रथा। इसके बाद ही हम पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था में पुनरुत्पादन के विशिष्ट रूपों को समझ सकते हैं, जो कि पूँजी संचय को समझने की बुनियाद है।

पुनरुत्पादन

सबसे पहले हमें यह समझना ज़रूरी है कि सामाजिक उत्पादन की हर प्रक्रिया पुनरुत्पादन की प्रक्रिया भी होती है। इसका क्या अर्थ है? इसका महज़ इतना मतलब है कि जिस प्रकार कोई समाज अपने लिए आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करना बन्द नहीं कर सकता, उसी प्रकार वह उनका उत्पादन करना भी बन्द नहीं कर सकता। इसलिए सामाजिक उत्पादन की प्रक्रिया इतिहास के हर दौर में एक बार-बार दुहराई जाने वाली प्रक्रिया होती है, जिसमें समान चरणों को बार-बार दुहराया जाता है। वह कोई एक बार होने वाली प्रक्रिया नहीं होती बल्कि बार-बार घटित होने वाली प्रक्रिया होती है। मार्क्स लिखते हैं :

> "इस प्रकार, जब हम एक आपस में अन्तर्सम्बन्धित पूर्णता के रूप में और उसके अविरत पुनर्नवीकरण के निरन्तर प्रवाह में पूरी प्रक्रिया को देखते हैं, तो यह साफ़ हो जाता है कि उत्पादन की हर सामाजिक प्रकिया उसी समय एक पुनरुत्पादन की प्रक्रिया भी होती है।" (*वही*, पृ. 711)

यह बात पाठकों को एक साधारण-सी बात लग सकती है जिसका ज़िक्र करना या उसे दुहराया जाना उन्हें अनावश्यक भी लग सकता है। लेकिन जैसे ही हम विश्लेषण की गहराई में उतरते हैं तो हमें इस बात का अहसास होता है कि सामान्य-सी दिखने वाली यह बात वास्तव में एक महत्वपूर्ण और गूढ़ बात है, जिसे न समझने या जिस पर पर्याप्त ध्यान न देने के कारण कई क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने गम्भीर भूलें कीं।

यदि सामाजिक उत्पादन की हर प्रक्रिया हर-हमेशा पुनरुत्पादन की प्रकिया भी होती है, तो इसका अर्थ है कि उत्पादन की स्थितियाँ या शर्तें भी हर-हमेशा पुनरुत्पादन की स्थितियाँ या शर्तें भी होती हैं। यदि किसी भी समाज में उत्पादन को कम-से-कम समान स्तर पर जारी रखना है, तो हर वर्ष उसे ख़र्च हो चुके उत्पादन के साधनों की भरपाई करनी होगी। यानी, उसे ख़र्च हो चुके उत्पादन के साधनों की पुन: आपूर्ति को सुनिश्चित करना होगा। हर वर्ष के कुल उत्पाद को हम केवल उपभोग के साधनों के रूप में नहीं देख सकते हैं। **वार्षिक उत्पाद के हमेशा दो हिस्से होंगे: पहला, स्थानापन्न उत्पाद (replacement product) और दूसरा, शुद्ध उत्पाद (net product)।** इस शुद्ध उत्पाद के ज़ाहिरा तौर पर एक वर्ग समाज में दो हिस्से होंगे: पहला, जो शासक वर्ग के उपभोग में जाते हैं यानी **बेशी उत्पाद (surplus product)** और दूसरा, जो उत्पादक वर्ग के उपभोग में जाते हैं यानी **आवश्यक उत्पाद (necessary product)।** स्पष्ट है कि पुनरुत्पादन के लिए जो पहली और सबसे ज़रूरी पूर्वशर्त है वह है ख़र्च हो चुके उत्पादन के साधनों की भरपाई, यानी वार्षिक उत्पाद का वह हिस्सा जो व्यक्तिगत उपभोग में नहीं इस्तेमाल होता, बल्कि उत्पादन में जाता है, या कहें कि उत्पादक उपभोग में इस्तेमाल किया जाता है; जिसे हमने यहाँ स्थानापन्न उत्पाद कहा है।

एक पूँजीवादी समाज में भी उत्पादन की प्रक्रिया हर-हमेशा पुनरुत्पादन की प्रक्रिया भी होती है। लिहाज़ा यहाँ भी पुनरुत्पादन की वह सामान्य पूर्वशर्त पूरी होनी चाहिए जिसका हमने ऊपर ज़िक्र किया है। यानी, व्यक्तिगत उपभोग में जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं के अलावा उन सभी उत्पादन के साधनों की भरपाई भी होनी चाहिए जो कि उत्पादन में ख़र्च हो चुके हैं। साथ में, पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया की विशिष्टता को समझना भी ज़रूरी है। जिस प्रकार पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया और कुछ नहीं बल्कि मूल्य संवर्धन या मूल्य की वृद्धि की प्रक्रिया है, यानी बेशी मूल्य समेत मूल्य के उत्पादन की प्रक्रिया है, उसी प्रकार *पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया पूँजीपति द्वारा पूँजी के रूप में उत्पादन में लगायी गयी मूल्य की मात्रा को वापस पूँजी के रूप में पुनरुत्पादित करना है, यानी मूल्य की ऐसी मात्रा के रूप में जो उत्पादन की प्रक्रिया में अपने आपको बढ़ाती है।* एक व्यक्ति पूँजीपति के तौर पर तभी स्थापित हो सकता है, जब उसका धन निरन्तर पूँजी के रूप में संचरित होता रहे, यानी, बार-बार उत्पादन में लगे और बेशी मूल्य समेत मूल्य का उत्पादन करे। सामान्य शब्दों में कहें तो उसके द्वारा निरन्तर निवेशित की जा रही पूँजी को उसके लिए नियमित तौर पर मुनाफ़ा पैदा करना होगा। यानी अगर कोई पूँजीपति किसी वर्ष रु. 1000 का पूँजी के रूप में निवेश करता है (यानी उससे उत्पादन के साधन व श्रमशक्ति ख़रीदता है) और उसे उत्पादन के एक चक्र के अन्त में रु. 500 के बेशी मूल्य समेत रु. 1500 प्राप्त होते हैं, तो यह प्रक्रिया साल-दर-साल दुहराई जानी चाहिए। यानी पूँजीवादी पुनरुत्पादन की यह पूर्वशर्त है कि पूँजीपति द्वारा निवेशित धन बार-बार अपने आपको पूँजी के रूप में पुनरुत्पादित करे, यानी धन की ऐसी मात्रा के रूप में जो निवेशित होने पर मुनाफ़ा देती हो।

सामन्ती व्यवस्था के विपरीत, जहाँ उत्पादक (किसान व भूदास) 3 दिन अपने प्लॉट पर काम करते हैं और आवश्यक उत्पाद व स्थानापन्न उत्पाद का एक हिस्सा पैदा करते हैं और बाकी 3 दिन या 4 दिन सामन्ती भूस्वामी के खेत पर काम करते हैं और बेशी उत्पाद व स्थानापन्न उत्पाद का दूसरा हिस्सा पैदा करते हैं, पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूर एक समेकित कार्यदिवस में पूँजीपति के कारखाने में काम करता है और पहले आवश्यक उत्पाद पैदा करता है और फिर उसके ऊपर बेशी उत्पाद पैदा करता है। समूचे पूँजीवादी उत्पादन को देखें तो मज़दूर वर्ग उसी कार्यदिवस में स्थानापन्न उत्पाद तथा आवश्यक उत्पाद व बेशी उत्पाद पैदा करते हैं। मज़दूर पूँजीपति की पूँजी के एक विशेष हिस्से यानी परिवर्तनशील पूँजी के रूप में अस्तित्वमान मुद्रा

(पेज 19 पर जारी)

पूँजी का संचय

(पेज 18 से आगे)

की एक निश्चित मात्रा के बदले में पूँजीपतियों को अपनी श्रमशक्ति बेचते हैं और बदले में एक पूरे कार्यदिवस के दौरान काम करते हैं। मज़दूर वर्ग के बेशी श्रम के बिना किसी मेहनताने के पूँजीपति द्वारा हड़प लिए जाने की सच्चाई को यह विशेषता छिपा देता है। मज़दूर अपने उपभोग के लिए आवश्यक सामग्री भी पैदा करता है और वह पूँजीपति के उपभोग के लिए आवश्यक सामग्री भी पैदा करता है।

वास्तव में, मज़दूरी तो मज़दूर को उत्पादन के बाद मिलती है। यानी, पूँजीपति उसे उधार नहीं दे रहा है, बल्कि मज़दूर पूँजीपति को उधार दे रहा है। मज़दूर पहले अपनी श्रमशक्ति को ख़र्च कर अपने उपभोग के बराबर मूल्य ('श्रम निधि') और पूँजीपति के उपभोग के लिए ज़रूरी मूल्य ('स्वामी निधि') पैदा करता है। मज़दूर द्वारा पैदा 'श्रम निधि' से ही पूँजीपति उसे मज़दूरी देता है, जो कि और कुछ नहीं बल्कि मज़दूरों द्वारा उत्पादित समस्त वार्षिक उत्पाद के उस हिस्से पर मज़दूर का दावा या ड्राफ्ट मात्र होता है, जो मज़दूरों के उपभोग में जाता है, यानी आवश्यक उत्पाद। यानी मज़दूर ही उत्पादन कर वह सामग्री पैदा कर चुका होता है, जिसके बदले में पूँजीपति उसे मज़दूरी देता है और मज़दूर अपने ही द्वारा उत्पादित उस सामग्री को पूँजीपति द्वारा दी गयी इस मज़दूरी से ख़रीदता है। मतलब कि मज़दूर ही मज़दूरी देने के लिए पूँजीपति को मूल्य पैदा करके दे रहा है। मार्क्स लिखते हैं :

"एक तय अवधि के लिए श्रमशक्ति की ख़रीद उत्पादन की प्रक्रिया की प्रस्तावना है; जब वह अवधि समाप्त हो जाती है जिसके लिए श्रमशक्ति को बेचा गया है, जब उत्पादन की एक निश्चित अवधि जैसे कि एक सप्ताह या एक माह समाप्त हो गया है, तो यह प्रस्तावना निरन्तर दुहराई जाती है। *लेकिन मज़दूर को तब तक भुगतान नहीं किया जाता है, जब तक कि वह अपनी श्रमशक्ति को ख़र्च नहीं कर चुका होता है, और मालों के रूप में अपनी श्रमशक्ति के मूल्य को और बेशी मूल्य की एक निश्चित मात्रा को वास्तविक रूप नहीं दे चुका होता है। इस प्रकार न सिर्फ़ वह बेशी मूल्य पैदा कर चुका होता है...बल्कि वह परिवर्तनशील पूँजी भी पैदा कर चुका होता है, यानी वह फण्ड भी पैदा कर चुका होता है जिससे उसे भुगतान किया जाता है, इससे पहले कि वह मज़दूरी के रूप में वापस उसके पास प्रवाहित हो; और उसका रोज़गार भी तभी तक रहता है जब तक वह इस निधि का पुनरुत्पादन करना जारी रखता है।*...मज़दूर के पास मज़दूरी के रूप में जो वापस प्रवाहित होता है वह उसी उत्पाद का एक अंश मात्र है जो वह स्वयं निरन्तर पुनरुत्पादित करता है। यह सच है कि पूँजीपति उसे मुद्रा के रूप में उसके श्रमशक्ति का मूल्य भुगतान करता है, लेकिन यह मुद्रा स्वयं उसके श्रम के उत्पाद का ही एक परिवर्तित रूप मात्र है।...मुद्रा-रूप द्वारा पैदा भ्रम तुरन्त ग़ायब हो जाता है अगर हम एक पूँजीपति और एक मज़दूर को देखने के बजाय समूचे पूँजीपति वर्ग और समूचे मज़दूर वर्ग को देखते हैं। पूँजीपति वर्ग निरन्तर मज़दूर वर्ग को मुद्रा के रूप में एक ड्राफ्ट (दावा, अधिकार या हुण्डी-ले.) देता है जो कि मज़दूर वर्ग द्वारा पैदा किये गये और पूँजीपति वर्ग द्वारा हस्तगत कर लिये गये उत्पाद का ही एक हिस्सा होता है। मज़दूर इस ड्राफ्ट को उतनी ही निरन्तरता से पूँजीपतियों को वापस देते हैं और बदले में उनसे अपने ही उत्पाद का वह हिस्सा लेते हैं, जो उनके लिए आबण्टित है। यह लेन-देन उत्पाद के माल-रूप और माल के मुद्रा-रूप द्वारा छिपा दिया जाता है।" (*वही*, पृ. 712-13, *ज़ोर हमारा*)

यानी मज़दूरी या परिवर्तनशील पूँजी और कुछ नहीं है बल्कि उस निधि या उत्पाद के उस हिस्से का महज़ एक विशिष्ट ऐतिहासिक रूप है जो कि वर्ग समाज में उत्पादन की हर सामाजिक प्रक्रिया में मौजूद होता है और जिसका उत्पादन और पुनरुत्पादन कभी भी शासक वर्ग नहीं बल्कि हमेशा स्वयं उत्पादक वर्ग ही करते हैं। यह निधि है 'श्रम निधि' या आवश्यक उत्पाद।

साथ ही, उत्पादक वर्ग ही हमेशा उत्पादन व पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में शासक वर्गों के उपभोग के लिए ज़रूरी उत्पाद भी पैदा करते हैं, यानी 'स्वामी निधि' या बेशी उत्पाद। उत्पादन के साधनों के स्वामी के उत्पादन के साधन भी और कुछ नहीं उत्पादक वर्गों के ही श्रम का उत्पाद होते हैं, यानी कि स्थानापन्न उत्पाद। इस स्थानापन्न उत्पाद का उत्पादन व पुनरुत्पादन भी हमेशा उत्पादक वर्ग ही करते हैं। इस मायने में पुनरुत्पादन की प्रक्रिया की सामान्यता को हम देख सकते हैं। पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था में वार्षिक उत्पाद के ये सभी हिस्से एक ही समेकित कार्यदिवस में और सामान्यत: एक ही स्थान पर पैदा किये जाते हैं, क्योंकि उत्पादक अब उजरती मज़दूर बन चुका है, उसकी श्रमशक्ति माल बन चुकी है और यह श्रमशक्ति एक माल के तौर पर बाज़ार में मज़दूरी के बदले बिकती है; अधिकांश उत्पाद माल बन चुके हैं; और इन मालों का भी बाज़ार में मुद्रा से विनिमय होता है। *श्रमशक्ति का माल बनना, मज़दूरी-रूप का पैदा होना, उत्पादों का माल-रूप ग्रहण करना और मालों द्वारा मुद्रा-रूप ग्रहण करना उत्पादन व पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में निहित शोषण पर पर्दा डालता है और इस सच्चाई को छिपा देता है कि समस्त वार्षिक उत्पाद मज़दूर वर्ग द्वारा पैदा किया है और पूँजीपति के उपभोग समेत उपभोग की समस्त वस्तुएँ और साथ ही उत्पादन के समस्त साधन मज़दूर वर्ग ही पैदा करता है।*

पुनरुत्पादन के सामान्य तत्वों और पूँजीवादी पुनरुत्पादन के विशिष्ट तत्वों को समझने के बाद हम आगे पूँजीवादी पुनरुत्पादन के दो रूपों पर चर्चा कर सकते हैं। पहला रूप होता है साधारण पुनरुत्पादन और दूसरा रूप होता है विस्तारित पुनरुत्पादन या पूँजी का संचय।

साधारण पुनरुत्पादन

साधारण पुनरुत्पादन वह स्थिति होती है जिसमें पूँजीवादी उत्पादन के दौरान पैदा होने वाले पूरे बेशी मूल्य का पूँजीपति उपभोग करता है। मज़दूर उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पादन के साधनों के मूल्य को माल में स्थानान्तरित करते हैं; वे अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य मालों के रूप में पैदा करते हैं; और उसके ऊपर वे पूँजीपति के लिए बेशी मूल्य को भी मालों के रूप में पैदा करते हैं। यदि यह समूचा बेशी मूल्य पूँजीपति के लिए 'स्वामी निधि' का काम करता है और वह पूरी तरह से उसका उपभोग करता है, तो उत्पादन पहले के पैमाने पर ही जारी रहता है। यही साधारण पुनरुत्पादन होता है। इसमें उत्पादन के पैमाने में कोई विस्तार नहीं होता है। यदि पूँजीपति ने रु. 1000 का पूँजी के रूप में निवेश किया और उत्पादन के पूरा होने और मालों के बिकने के बाद उसके हाथ में रु. 1500 आये, यानी उसे रु. 500 का मुनाफ़ा प्राप्त हुआ, और उसने इस पूरे मुनाफ़े का इस्तेमाल अपने व्यक्तिगत उपभोग में किया और उत्पादन के अगले चक्र में फिर से रु. 1000 का निवेश किया, तो हम कहेंगे कि इस मामले में साधारण पुनरुत्पादन हो रहा है।

साधारण पुनरुत्पादन के मामले में भी इसका पूँजीवादी चरित्र बिल्कुल स्पष्ट है। यहाँ पर मज़दूर का श्रम ही पूँजीपति के उपभोग के लिए बेशी मूल्य पैदा कर रहा है और अपने व्यक्तिगत उपभोग के लिए मज़दूरी के बराबर मूल्य भी वही पैदा कर रहा है। लेकिन वास्तव में जब हम साधारण पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को ही एक निरन्तरता में, एक सतत् प्रवाह के रूप में देखते हैं कि मज़दूर का श्रम न सिर्फ़ पूँजीपति के उपभोग और मज़दूर के उपभोग के लिए बेशी मूल्य और परिवर्तनशील पूँजी के बराबर नया मूल्य पैदा कर रहा है, *बल्कि उसका श्रम एक निश्चित समय के बाद पूँजीपति की समूची आरम्भिक पूँजी के बराबर मूल्य पैदा कर देता है।* जब हम एक पूँजीपति और उसके मज़दूरों के बीच के सम्बन्धों के बजाय समूचे पूँजीवादी समाज के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं तो यह सच्चाई और भी साफ़ हो जाती है। यह मज़दूरों का श्रम ही है जो कि उत्पादन के साधनों को भी पैदा करता है, वही खानों-खदानों से खुदाई करके उस प्राकृतिक संसाधन को भी धरती के गर्भ से निकालता है जो उत्पादन अथवा उपभोग के साधनों के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं। मज़दूर का श्रम की पूँजीवादी उत्पादन व पुनरुत्पादन की प्रकिया में स्थानापन्न उत्पाद व शुद्ध उत्पाद (जिसके दो हिस्से पूँजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग के उपभोग में जाते हैं: बेशी उत्पाद व आवश्यक उत्पाद) दोनों ही पैदा करते हैं। यह महज़ पूँजीवादी स्वामित्व के सम्बन्ध और श्रम का विभाजन है, यानी पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध है जिनके कारण उसे सबकुछ पैदा करने के बदले में मज़दूरी के रूप में जीने की ख़ुराक भर मिलती है। लेकिन एक कारखाने के स्तर पर भी देखें तो कुछ समय के बाद मज़दूर बिल्कुल जायज़ तौर पर पूँजीपति की समूची पूँजी, यानी उसके उत्पादन के साधनों पर, अपना दावा ठोंक सकते हैं। इसे मार्क्स द्वारा दिये गये उदाहरण से समझते हैं :

"अगर 1000 पाउण्ड के इस्तेमाल से हर वर्ष 200 पाउण्ड का बेशी मूल्य पैदा होता है, और अगर इस बेशी मूल्य का हर वर्ष उपभोग कर लिया जाता है, तो यह स्पष्ट है कि अगर यह प्रक्रिया पाँच वर्षों के लिए दुहराई जाती है, तो उपभोग कर लिये गये बेशी मूल्य की राशि होगी 5 x 200 पाउण्ड, या 1000 पाउण्ड, जो कि पूँजीपति ने शुरुआत में लगाया था। अगर पूँजीपति बेशी मूल्य के केवल एक हिस्से का, मान लें आधे हिस्से का, उपभोग करता है तो यही नतीजा दस वर्षों के अन्त में सामने आयेगा, क्योंकि 10 x 100 पाउण्ड = 1000 पाउण्ड। *इससे निम्न सामान्य सूत्रीकरण उभरता है: लगायी गयी पूँजी का मूल्य बटा वार्षिक तौर पर उपभोग कर लिया जाने वाला बेशी मूल्य हमें उन वर्षों की संख्या, या पुनरुत्पादन की अवधियों की संख्या बता देगा जिनके समाप्त हो जाने पर मूल तौर पर लगायी गयी पूँजी का पूँजीपति ने उपभोग कर दिया है और अब वह ग़ायब हो चुकी है।* पूँजीपति को यह लगता है कि वह दूसरों के बेगार श्रम के उत्पाद, यानी बेशी मूल्य, का उपभोग करता जा रहा है जबकि उसकी मूल पूँजी का मूल्य ज्यों का त्यों सुरक्षित बना हुआ है; लेकिन जो उसे लगता है वह वास्तविक स्थिति को नहीं बदल सकता। एक निश्चित संख्या में वर्षों के बीतने के बाद, उसके पास जो पूँजी थी उसका मूल्य उस बेशी मूल्य के कुल योग के बराबर होता है जो उन वर्षों के दौरान उसनेहड़पा है, और जिस कुल मूल्य का उसने उपभोग किया होता है वह उसकी मूल पूँजी के मूल्य के बराबर होता है। यह सच है कि उसके हाथ में अभी भी पूँजी की एक मात्रा है जिसका परिमाण बदला नहीं है, और इसका एक हिस्सा, जैसे कि इमारतें, मशीनरी, आदि पहले से मौजूद थी जब उसने अपना व्यावसायिक काम शुरू किया। *लेकिन यहाँ हमारा सरोकार पूँजी के भौतिक संघटकों से नहीं है। हमारा सरोकार यहाँ उसके मूल्य से है।* अगर कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति के मूल्य के बराबर कर्ज़ लेकर अपनी पूरी सम्पत्ति का उपभोग कर जाता है, तो यह स्पष्ट है कि उसकी सम्पत्ति अब और किसी चीज़ की नहीं बल्कि उसके द्वारा लिए गये कुल कर्ज़ के योग की नुमाइन्दगी करती है। और ऐसा ही पूँजीपति के साथ होता है; *जब उसने अपनी मूल पूँजी के बराबर मूल्य का उपभोग कर लिया होता है, तो उसकी वर्तमान पूँजी और किसी चीज़ की नहीं बल्कि उसके द्वारा बिना किसी भुगतान के हड़पे गये बेशी मूल्य की कुल राशि की नुमाइन्दगी करती है। उसकी पुरानी पूँजी के मूल्य का एक अणु भी बचा नहीं रह गया होता है।*" (*वही*, पृ. 714-715, *ज़ोर हमारा*)

दूसरे शब्दों में, महज़ पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया की निरन्तरता ही यह सुनिश्चित करती है कि पूँजीपति की पूँजी कुछ ही समय में संचित पूँजी, यानी मज़दूरों के श्रम से पैदा होने वाले बेशी उत्पाद को बिना किसी मेहनताने के हड़पने से बनी निधि, में तब्दील हो जाती है। यदि हम यह भी मान लें कि पूँजीपति ने जब एक उद्यमी पूँजीपति के तौर पर अपना धंधा शुरू किया तो उसकी मूल पूँजी वास्तव में उसके ही श्रम और बचत से एकत्र पूँजी थी और वह अन्य किसी मज़दूर के शोषण से संचित पूँजी नहीं थी, तो भी पूँजीवादी पुनरुत्पादन अपने साधारण रूप में भी यह सुनिश्चित करता है कि कुछ ही समय में इस उद्यमी पूँजीपति के

(पेज 20 पर जारी)

पूँजी का संचय

(पेज 19 से आगे)

पास जो बचेगा वह केवल मज़दूरों से हड़पे हुए बेशी मूल्य का भण्डार, पूँजीकृत बेशी मूल्य या संचित पूँजी ही होगी। हालाँकि सच यह है कि आम तौर पर कहें तो एक वर्ग के तौर पर पूँजीपति वर्ग के पास वह आरम्भिक पूँजी भी प्रत्यक्ष उत्पादकों को उत्पादन के साधनों से वंचित करने की प्रक्रिया से ही आती है, जिसे मार्क्स ने *आदिम संचय* कहा है और जिसके बारे में हम आगे आने वाले एक अध्याय में पढ़ेंगे। लेकिन यदि उन पूँजीपतियों की भी बात करें जो यह दावा करते हैं कि उनकी आरम्भिक पूँजी का स्रोत स्वयं उनका, या उनके बाप-दादों का व्यक्तिगत श्रम है, तो उनके मामले में भी उनके पूँजीपति में तब्दील होते ही पूँजीवादी पुनरुत्पादन की निरन्तर दुहराई जाने वाली प्रक्रिया यह सुनिश्चित करती है कि कुछ ही समय बाद उनकी समूची पूँजी मज़दूरों से हड़पे गये बेशी मूल्य में तब्दील हो चुकी होती है। यानी, आम तौर पर, पूँजीवादी उत्पादन व पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में मज़दूर एक निश्चित समय में पूँजीपति को इतना मुनाफ़ा पैदा करके दे देते हैं, जो उस पूँजीपति की मूल पूँजी के बराबर होता है।

यह भी स्पष्ट है कि पूँजीवादी उत्पादन व पुनरुत्पादन की यह प्रक्रिया साधारण पुनरुत्पादन के मामले में भी निरन्तर यह सुनिश्चित करती है कि पूँजी-सम्बन्ध या मज़दूरी-सम्बन्ध का पुनरुत्पादन होता रहे। यानी पूँजीपति का पूँजीपति के रूप में, यानी पूँजी के स्वामी के रूप में, और मज़दूर का मज़दूर के रूप में, यानी सिर्फ़ और सिर्फ़ श्रमशक्ति के स्वामी के रूप में पुनरुत्पादन होता रहे। पूँजीवादी उत्पादन की शुरुआत महज़ मालों के उत्पादन व संरचरण से, यानी उनके बिकने-ख़रीदे जाने से नहीं हो सकती। यह तो पूँजीवादी उत्पादन के सैंकड़ों वर्षों पहले से, दास प्रथा के समय से ही होता आया है: यानी वस्तुओं को बेचे-ख़रीदे जाने वाले माल के तौर पर पैदा किया जाना। *पूँजीवादी उत्पादन के लिए सबसे ज़रूरी पूर्वशर्त यह है कि प्रत्यक्ष उत्पादकों से उत्पादन के साधनों को छीन लिया जाय और साथ ही ये उत्पादन के साधन एक छोटी-सी अल्पसंख्या के हाथ में केन्द्रित हो जायें।* यानी, पूँजीवादी उत्पादन तभी सम्भव है जब उत्पादक को उजरती मज़दूर में तब्दील कर दिया गया है और उत्पादन के साधन पूँजीपति वर्ग के हाथों में केन्द्रित हो गये हैं। श्रमशक्ति के स्वामी के तौर पर मज़दूर और पूँजी के स्वामी के तौर पर पूँजीपति एक-दूसरे से पूँजीवादी श्रम बाज़ार में मिलते हैं, जहाँ पूँजीपति मज़दूरी (श्रमशक्ति के मूल्य के परिवर्तित रूप) के बदले मज़दूर की श्रमशक्ति को ख़रीदता है। इसके साथ ही पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया शुरू होती है क्योंकि इसी के साथ उत्पादक का श्रमकाल दो हिस्सों में बँटा जाता है: आवश्यक श्रमकाल जिसमें वह अपने लिए काम करता है और अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा करता है और बेशी श्रमकाल जिसमें वह बिना किसी मेहनताने के लिए पूँजीपति के लिए काम करता है और उसका मुनाफ़ा पैदा करता है।

पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया यह सुनिश्चित करती है कि पूँजीपति और मज़दूर के बीच का यह सम्बन्ध पुनरुत्पादित होता रहे; यानी मज़दूर जीने की ख़ुराक के बदले एक पूरे कार्यदिवस में पूँजीपति के लिए अपना हाड़ गलाकर उसके लिए मुनाफ़ा और समृद्धि पैदा करता रहे। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि एक बार श्रमशक्ति के बिकने के बाद पूँजीपति उसका स्वामी होता है और उसके किसी भी रूप में उपयोग का अधिकारी होता है। नतीजतन, इस श्रमशक्ति का उत्पादक उपभोग, यानी मज़दूर द्वारा जीवित श्रम का दिया जाना एक ऐसी प्रक्रिया होती है, जिसमें मज़दूर स्वयं अपने श्रम से *अलगावग्रस्त* होता है। वह श्रम करता है तो वह जानता है कि वह अपने लिए नहीं बल्कि पूँजीपति के लिए श्रम कर रहा है। ठीक इसीलिए उसके श्रम का उत्पाद भी उसके लिए पराया होता है; वह पूँजीपति का होता है; उसे बार-बार पूँजीपति द्वारा हड़पा जाता है और यही पूँजीपति की संचित पूँजी और उसकी समृद्धि का स्रोत होता है। जितना मज़दूर काम करता जाता है, उतना ही वह उस शत्रुतापूर्ण ताक़त को बड़ा करता जाता है, जो उसे ही लूटती है: यानी, पूँजी। पूँजीपति वर्ग जितना समृद्ध होता जाता है, मज़दूर वर्ग सापेक्षिक तौर पर उतना ही दरिद्र होता जाता है। मार्क्स कहते हैं :

> "एक ओर उत्पादन प्रक्रिया लगातार भौतिक सम्पदा को पूँजी, यानी पूँजीपति के आनन्द और उसके मूल्य संवर्धन के साधन में में तब्दील करती है। दूसरी ओर, मज़दूर हमेशा इस प्रक्रिया को उसी अवस्था में छोड़कर जाता है, जिसमें कि उसने प्रवेश किया था – समृद्धि के एक निजी स्रोत के रूप में, लेकिन उन सभी साधनों से वंचित होकर जिनके ज़रिये वह इस समृद्धि को अपने लिए एक असलियत में बदल पाता। *क्योंकि, प्रक्रिया में प्रवेश करने से पहले ही, उसके श्रम का उससे पहले ही अलगाव कर दिया गया है, उसे पूँजीपति द्वारा हस्तगत कर लिया गया है, और उसे पूँजी में सम्मिलित कर लिया गया है, यह अब, इस प्रक्रिया के ही दौरान, लगातार अपने आपको वस्तुरूप देता है और एक ऐसा उत्पाद बन जाता है जो उसके लिए पराया है। चूँकि उत्पादन की प्रकिया श्रमशक्ति के पूँजीपति द्वारा उपभोग की प्रक्रिया भी है, इसलिए मज़दूर का उत्पाद लगातार महज़ मालों में ही नहीं, बल्कि पूँजी में, यानी ऐसे मूल्य में तब्दील होता रहता है जो मज़दूर की मूल्य पैदा करने की शक्ति को चूसता रहा है, ऐसे आजीविका के साधनों में जो वास्तव में इंसानों को ख़रीदते हैं, और ऐसे उत्पादन के साधनों में जो उत्पादन करने वाले लोगों को काम पर लगाते हैं। इसलिए मज़दूर स्वयं निरन्तर वस्तुगत सम्पदा को पूँजी के रूप में पैदा करता है जो एक परायी शक्ति है जो उसे दबाती है और उसका शोषण करती है; और उसी प्रकार पूँजीपति भी निरन्तर श्रमशक्ति का समृद्धि के एक ऐसे मनोगत स्रोत के रूप उत्पादन करता रहता है, जो बस मज़दूर के भौतिक शरीर में वास करती है, और अपने ही वस्तुकरण और वास्तवीकरण के ज़रिये उससे अलग कर दी जाती है; संक्षेप में, पूँजीपति मज़दूर को एक उजरती श्रमिक के रूप में पैदा करता है।* यह निरन्तर जारी पुनरुत्पादन, मज़दूर के अस्तित्व को यह निरन्तर जारी रखा जाना, पूँजीवादी उत्पादन की निरपेक्ष रूप से अनिवार्य पूर्वशर्त है।" (*वही*, पृ. 716, *ज़ोर हमारा*)

पूँजीवादी पुनरुत्पादन में जिस प्रकार मज़दूर पूँजी का उत्पादन करता जाता है उसी प्रकार पूँजीपति श्रमशक्ति का उत्पादन करता जाता है। यह पूँजीवादी पुनरुत्पादन की पूर्वशर्त है। श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के बिना पूँजीवादी पुनरुत्पादन जारी नहीं रह सकता। वास्तव में, श्रमशक्ति का उत्पादन व पुनरुत्पादन पूँजीपति के सबसे प्रमुख उत्पादन के साधन का उत्पादन व पुनरुत्पादन है: यानी, स्वयं मज़दूर। श्रमशक्ति को ख़रीदकर पूँजीपति मज़दूर पर अहसान नहीं करता। उल्टे इसके ज़रिये उसे दो तरीके से फ़ायदा होता है। मज़दूरी के बदले में पूँजीपति मज़दूर से जो लेता है न सिर्फ़ उससे उसका मुनाफ़ा आता है, बल्कि पूँजीपति मज़दूर को जो देता है, उससे भी उसे फ़ायदा होता है। पूँजीपति द्वारा दी गयी मज़दूरी से मज़दूर अपने और अपने परिवार के जीवन के लिए आवश्यक उपभोग की वस्तुएँ ख़रीदकर अपनी श्रमशक्ति का पुनरुत्पादन करता है। लेकिन मज़दूर का व्यक्तिगत उपभोग ही उसकी श्रमशक्ति के उत्पादक उपभोग को सम्भव बनाता है। यह उस सबसे ज़रूरी उत्पादन के साधन को पैदा करता है, जिसकी आवश्यकता पूँजीपति को है, यानी स्वयं मज़दूर जो कि उसके लिए उस श्रमशक्ति का वाहक मात्र है।

पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया यह सुनिश्चित करती है कि एक ज़रूरतमन्द व्यक्ति के तौर पर उजरती मज़दूर का भी पुनरुत्पादन होता रहे। इस रूप में मज़दूर की श्रमशक्ति वस्तुत: बिकने से पहले भी मज़दूर की अपनी श्रमशक्ति नहीं होती, बल्कि वह पूँजीपति वर्ग की होती है। प्राचीन काल का गुलाम सीधे दास-स्वामियों की नंगी आँखों से देखी जा सकने वाली बेड़ियों से बँधा हुआ था। आधुनिक पूँजीवादी समाज का उजरती गुलाम, यानी मज़दूर, जो उजरत के बदले अपनी श्रमशक्ति को लगातार बार-बार बेचने को बाध्य होता है, अदृश्य बेड़ियों से पूँजीपति वर्ग से बँधा होता है। श्रमशक्ति को बेचते रहने की उसकी बाध्यता उसे पूँजीपति वर्ग का उजरती गुलाम बनाती है। साधारण पुनरुत्पादन की स्थिति में भी, जिसमें पूँजीपति हड़पे गये समस्त बेशी मूल्य को अपने उपभोग पर ख़र्च कर देता है, यह प्रक्रिया जारी रहती है। मार्क्स साधारण पुनरुत्पादन की अपनी चर्चा का समापन इन शब्दों से करते हैं :

> "इसलिए पूँजीवादी उत्पादन स्वयं अपनी प्रक्रिया में श्रमशक्ति और श्रम की स्थितियों (यानी उत्पादन के साधनों – ले.) के बीच के विलगाव का पुनरुत्पादन करता है। इसके ज़रिये यह उन स्थितियों का पुनरुत्पादन करता है और उनकी निरन्तरता को सुनिश्चित करता है जिसके तहत मज़दूर का शोषण होता है। वह लगातार उसे जीने की ख़ातिर अपनी श्रमशक्ति को बेचने को बाध्य करता है, और पूँजीपति को श्रमशक्ति को ख़रीदने में सक्षम बनाता है ताकि वह अपने आपको समृद्ध करता रह सके। यह अब महज़ संयोग नहीं होता कि पूँजीपति और मज़दूर का बाज़ार में ख़रीदार और विक्रेता के रूप में सामना होता है। यह स्वयं इस प्रक्रिया की प्रत्यावर्ती (alternating) लय होती है जो बार-बार मज़दूर को बाज़ार में उसकी श्रमशक्ति के विक्रेता के रूप में फेंकती है और लगातार उसके उत्पाद को एक ऐसे साधन में तब्दील करती है जिसके ज़रिये एक दूसरा व्यक्ति उसे ख़रीद सकता है। *असल में, अपने आपको पूँजीपति को बेचने से पहले ही मज़दूर पर पूँजी का स्वामित्व होता है। उसकी आर्थिक दासता की उस कार्रवाई के नियमित पुनर्नवीकरण के ज़रिये एक ही साथ मध्यस्थता भी की जाती है और उसे छिपाया भी जाता है, जिसके अन्तर्गत वह अपने आपको बेचता है, अपने स्वामियों की अदला-बदली करता है, और जिसके अन्तर्गत उसके श्रम की बाज़ार-कीमत में उतार-चढ़ाव आते हैं। इसलिए पूर्ण और अन्तर्सम्बन्धित प्रक्रिया के रूप में देखने पर पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया, यानी पुनरुत्पादन की एक प्रक्रिया, न सिर्फ मालों को पैदा करती है, न सिर्फ़ बेशी मूल्य को पैदा करती है, बल्कि यह स्वयं पूँजी-सम्बन्ध का भी उत्पादन व पुनरुत्पादन करती है; एक ओर पूँजीपति का, और दूसरी ओर उजरती श्रमिक का।*" (*वही*, पृ. 723-724, *ज़ोर हमारा*)

पूँजीवादी क़रार का कानूनी रिश्ता केवल एक कानूनी कल्पना मात्र है जो मालिकों की अदला-बदली करने की स्वतन्त्रता के ज़रिये मज़दूरों की पूँजी के प्रति ढाँचागत अधीनस्थता को छिपाती है। वास्तव में, साधारण पुनरुत्पादन की स्थिति में ही उत्पादन व पुनरुत्पादन का पूँजीवादी चरित्र स्पष्ट हो जाता है।

लेकिन वास्तव में आम तौर पर पूँजीवादी उत्पादन का आम नियम साधारण पुनरुत्पादन नहीं होता, बल्कि विस्तारित पूँजीवादी उत्पादन होता है। पूँजीवादी प्रतिस्पर्द्धा और पूँजीपति वर्ग की अधिक से अधिक मुनाफ़े की हवस इसका बुनियादी कारण है। पूँजीवाद की आम प्रवृत्ति साधारण पुनरुत्पादन नहीं है, बल्कि पूँजी का संचय, बेशी मूल्य के एक हिस्से को पूँजी में तब्दील करना और विस्तारित पुनरुत्पादन करना है। साधारण पुनरुत्पादन की चारित्रिक अभिलाक्षणिकताओं को समझाने के बाद मार्क्स वह बुनियादी तैयार कर लेते हैं, जिसके आधार पर हम बेशी मूल्य के पूँजीकरण (capitalization of surplus-value), पूँजी संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन को समझ सकते हैं।

(अगले अंक में अध्याय 15 जारी रहेगा जिसमें बेशी-मूल्य का पूँजीकरण, पूँजी संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन पर विचार किया जायेगा)

रूसी क्रान्ति के नेता, मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक वी.आई. लेनिन की 100वीं बरसी के अवसर पर

आर्थिक संघर्ष के पीछे राजनीतिक प्रचार कार्य को भुलाओ मत!

'रूसी सामाजिक जनवादियों* के बीच प्रतिगामी प्रवृत्ति' के अंश

...सभी देशों के मज़दूर और अपने को सचेतन सामाजिक-आन्दोलन के इतिहास से यह पता चलता है कि मज़दूरों के सबसे अग्रणी संस्तर ही समाजवाद के विचारों को सबसे पहले और सबसे अच्छी तरह ग्रहण करते हैं। इन संस्तरों से ही वे हरावल मज़दूर आते हैं जिन्हें हर मज़दूर आन्दोलन आगे बढ़ाता है, वे मज़दूर जो मज़दूर समूहों का पूरा विश्वास पा सकते हैं, जो सर्वहारा की शिक्षा और संगठन के कार्य में अपना सर्वस्व अर्पित करते हैं, जो पूरी तरह सचेतन रूप से समाजवाद को स्वीकार करते हैं और जिन्होंने स्वतंत्र रूप से समाजवादी सिद्धान्त निरूपित तक कर लिये हैं।

हर जानदार मज़दूर आन्दोलन अपने ऐसे नेता, अपने प्रूदों और वाइयां, वाइटलिंग और बेबेल सामने लाता रहा है। रूसी मज़दूर आन्दोलन भी इस मामले में यूरोप से पीछे नहीं रहने वाला है। आज जबकि शिक्षित समाज ईमानदारी भरे, अवैध साहित्य में दिलचस्पी खो रहा है, मज़दूरों में ज्ञान की और समाजवाद की उत्कट अभिलाषा बढ़ रही है, मज़दूरों में सच्चे वीर सामने आ रहे हैं, जो अपने जीवन के बेहूदा हालात के बावजूद, फ़ैक्टरी में जड़ीभूत कर देने वाले कारावासीय श्रम के बावजूद ऐसा चरित्र और इतना दृढ़ संकल्प रखते हैं कि वे अध्ययन में जुटे रहते हैं ये केवल इसी बात में भिन्न हैं कि ये सामाजिक-जनवादी मज़दूर आन्दोलन का स्वतन्त्र रूप से संचालन नहीं कर सकते।

उस समाचारपत्र में, जो पार्टी का मुखपत्र होगा, औसत मज़दूर कुछ लेख नहीं समझ पायेगा, जटिल सैद्धान्तिक या व्यावहारिक प्रश्न उसके लिए पूरी तरह स्पष्ट नहीं होंगे। इससे यह निष्कर्ष क़तई नहीं निकलता कि अख़बार को अपना स्तर अपने अधिकांश पाठकों के स्तर तक नीचे लाना चाहिए। उल्टे, अख़बार को उनका स्तर ऊँचा उठाना चाहिए और औसत मज़दूरों के संस्तर से अग्रणी मज़दूरों को सामने लाने में मदद करनी चाहिए।

मज़दूर आन्दोलन के इतिवृत्त में और प्रचार के निकटतम प्रश्नों में ही सबसे अधिक रुचि लेने वाले तथा स्थानीय व्यावहारिक गतिविधियों में लगे ऐसे मज़दूर को अपने हर क़दम के साथ सारे रूसी मज़दूर आन्दोलन का, उसके ऐतिहासिक कार्यभार का, समाजवाद के अन्तिम ध्येय का विचार जोड़ना चाहिए, सो ऐसे समाचारपत्र को जिसके अधिकांश पाठक औसत मज़दूर ही हैं, हर स्थानीय और संकीर्ण प्रश्न के साथ समाजवाद और राजनीतिक संघर्ष को जोड़ना चाहिए।

अन्ततः औसत संस्तर के बाद सर्वहारा के निम्नतर संस्तर के समूह आते हैं। बहुत सम्भव है कि समाजवादी समाचारपत्र पूरी तरह या प्रायः पूरी तरह उनकी समझ से परे होगा (आख़िर पश्चिमी यूरोप में भी सामाजिक-जनवादी मतदाताओं की संख्या सामाजिक-जनवादी अख़बारों के पाठकों की संख्या से कहीं अधिक है), लेकिन इससे यह निष्कर्ष निकालना बिल्कुल बेतुका होगा कि सामाजिक-जनवादियों के समाचारपत्र को मज़दूरों के यथासम्भव अधिक निम्नतर संस्तर के अनुरूप बनाना चाहिए।

इससे तो केवल यही निष्कर्ष निकलता है कि ऐसे संस्तरों पर प्रचार के दूसरे साधनों से प्रभाव डालना चाहिए — अधिक सरल, सुबोध भाषा में लिखी पुस्तिकाओं, मौखिक प्रचार तथा मुख्यतः स्थानीय घटनाओं पर परचों द्वारा। सामाजिक-जनवादियों को तो इतने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए : बहुत सम्भव है कि मज़दूरों के निम्नतर संस्तरों में वर्ग-चेतना जगाने के पहले क़दम वैध ज्ञान-प्रसार कार्यों के रूप में ही उठाये जाने चाहिए। पार्टी के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि वह इन कार्यों का उपयोग करे, इन्हें उस दिशा में ही लक्षित करे, जहाँ इनकी सबसे अधिक आवश्यकता है। वैध ज्ञान-प्रसारकों को उस ज़मीन को जोतने के लिए भेजे, जिसमें बाद में सामाजिक-जनवादी प्रचारक बीज बोयेंगे।

बेशक मज़दूरों के निम्नतर संस्तरों में प्रचार कार्य में प्रचारकों को अपनी निजी विशिष्टताओं, स्थान, व्यवसाय आदि की विशिष्टताओं का उपयोग करने की सर्वाधिक व्यापक सम्भावनाएँ मिलनी चाहिए। "कार्यनीति और प्रचार को गड्डमड्ड नहीं करना चाहिए," बर्नस्टीन के ख़िलाफ़ इस पुस्तक में काऊत्स्की** लिखते हैं। "प्रचार का तरीक़ा व्यक्तिगत और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए। प्रचार कार्य में हर प्रचारक को वे साधन चुनने की छूट देनी चाहिए, जो उसके पास हैं : कोई प्रचारक अपने जोश से सबसे अधिक प्रभावित करता है, तो कोई दूसरा अपने तीखे कटाक्षों से, जबकि तीसरा ढेरों मिसालें देकर, वगैरह, वगैरह। "प्रचारक के अनुरूप होने के साथ ही प्रचार को जनता के भी अनुरूप होना चाहिए। प्रचारक को ऐसे बोलना चाहिए कि सुनने वाले उसकी बातें समझें। उसे यह ध्यान में रखना चाहिए कि श्रोता क्या कुछ जानते हैं। कहना न होगा कि ये सब बातें केवल किसानों के बीच प्रचार कार्य पर ही लागू नहीं होती हैं। गाड़ीवानों से ऐसे बात नहीं करनी चाहिए, जैसे जहाज़ियों से और जहाज़ियों से वैसे बात नहीं करनी चाहिए, जैसे छापाख़ाने के मज़दूरों से। प्रचार कार्य व्यक्तियों के अनुरूप होना चाहिए, लेकिन हमारी कार्यनीति—हमारी राजनीतिक गतिविधियाँ एक ही होनी चाहिए" (पृ. 2-3)।

सामाजिक-जनवादी सिद्धान्त के अग्रणी प्रतिनिधि के इन शब्दों में पार्टी की सारी गतिविधियों में प्रचार कार्य का मर्म बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया गया है। ये शब्द बताते हैं कि उन लोगों के सन्देह कितने निराधार हैं, जो यह सोचते हैं कि राजनीतिक संघर्ष चलाने वाली क्रान्तिकारी पार्टी गठित किया जाना प्रचार कार्य में बाधक होगा, उसे पृष्ठभूमि में डाल देगा या प्रचारकों की स्वतन्त्रता सीमित करेगा।

इसके विपरीत सुसंगठित पार्टी ही व्यापक प्रचार कार्य कर सकती है, सभी आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों पर प्रचारकों को आवश्यक निर्देश (और सामग्री) दे सकती है, प्रचार कार्य की हर स्थानीय सफलता का उपयोग सभी रूसी मज़दूरों की शिक्षा के लिए कर सकती है, प्रचारकों को ऐसे लोगों के बीच या ऐसे स्थानों पर भेज सकती है, जहाँ वे सर्वाधिक सफलता से काम कर सकते हैं। सुसंगठित पार्टी में ही प्रचारक की योग्यता रखने वाले लोग अपने को पूरी तरह इस कार्य को अर्पित करने की दशा में होंगे, जिससे प्रचार कार्य का भी और सामाजिक-जनवादी कार्य के शेष सभी पहलुओं का भी हित होगा।

इससे यह पता चलता है कि जो व्यक्ति आर्थिक संघर्ष के पीछे राजनीतिक प्रचार कार्य को भुला देता है, जो मज़दूर आन्दोलन को राजनीतिक पार्टी के संघर्ष में संगठित करने की आवश्यकता को भुला देता है, वह, और सब बातों के अलावा सर्वहारा के निम्नतर संस्तरों को मज़दूरों के ध्येय में शामिल करने का कार्य सुदृढ़ आधार पर और सफलतापूर्वक करने के अवसर तक से अपने आपको वंचित करता है।

(1899 के अंत में लिखित,
खण्ड 4, पृ. 268-271)

* सामाजिक-जनवादी उस समय कम्युनिस्टों के लिए प्रयोग किया जाता था।

** काऊत्स्की तब संशोधनवादी नहीं हुए थे।

हर जानदार मज़दूर आन्दोलन अपने ऐसे नेता, अपने प्रूदों और वाइयां, वाइटलिंग और बेबेल सामने लाता रहा है। रूसी मज़दूर आन्दोलन भी इस मामले में यूरोप से पीछे नहीं रहने वाला है। आज जबकि शिक्षित समाज ईमानदारी भरे, अवैध साहित्य में दिलचस्पी खो रहा है, मज़दूरों में ज्ञान की और समाजवाद की उत्कट अभिलाषा बढ़ रही है, मज़दूरों में सच्चे वीर सामने आ रहे हैं, जो अपने जीवन के बेहूदा हालात के बावजूद, फ़ैक्टरी में जड़ीभूत कर देने वाले कारावासीय श्रम के बावजूद ऐसा चरित्र और इतना दृढ़ संकल्प रखते हैं कि वे अध्ययन में जुटे रहते हैं जनवादी "मज़दूर बुद्धिजीवी" बनाते हैं। रूस में ऐसे "मज़दूर बुद्धिजीवी" अब हैं और हमें इस बात के लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए कि इनकी संख्या निरन्तर बढ़े, इनकी उच्च बौद्धिक आवश्यकताएँ पूरी हों, कि इनके बीच से रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के नेता बनें।

वह समाचारपत्र, जो सभी रूसी सामाजिक-जनवादियों का मुखपत्र बनना चाहता है, उसे इन अग्रणी मज़दूरों के स्तर पर ही होना चाहिए; उसे न केवल अपने स्तर को कृत्रिम रूप से नीचा नहीं करना चाहिए, बल्कि उल्टे, उसे निरन्तर ऊँचा उठाना चाहिए, विश्व सामाजिक-जनवाद के सभी कार्यनीतिक, राजनीतिक और सैद्धान्तिक प्रश्नों पर ध्यान देना चाहिए। ऐसा होने पर ही मज़दूर बुद्धिजीवियों की आवश्यकताएँ पूरी होंगी और वे रूसी मज़दूरों के और परिणामतः रूसी क्रान्ति के ध्येयों को अपने हाथों में ले लेंगे।

संख्या में कम अग्रणी मज़दूरों के संस्तर के बाद औसत मज़दूरों का व्यापक संस्तर आता है। ये मज़दूर भी समाजवाद के लिए लालायित हैं, मज़दूर अध्ययन मण्डलों में भाग लेते हैं, समाजवादी अख़बार और पुस्तकें पढ़ते हैं, प्रचार-कार्य में भाग लेते हैं। उपरोक्त संस्तर से

कहानी

देह भंग स्वप्न भंग

शकील सिद्दीक़ी

"ऐ मिस्टर.....यहाँ काम करने आये हो या तम्बाकू फाँकने।"

एक कड़कती हुई आवाज़ उसके कानों के पर्दों को चीरती हुई अन्दर दूर तक फैल गयी। वह थोड़ा विचलित हुआ। आवाज़ जानी पहचानी थी फिर भी उसकी बाईं हथेली पर रगड़ खा रहा अँगूठा एकाएक रुक गया। तम्बाकू वाला हाथ उसने पीछे कर लिया और कुछ उछलता हुआ-सा बक्सा छोड़कर खड़ा हो गया। उसकी नज़रें सामने खड़े हुए व्यक्ति से टकरायीं। उसे मौन खड़ा देखकर सामने खड़ा व्यक्ति जैसे खीझ उठा।

"मैं तुमसे क्या पूछ रहा हूँ?"

उसका स्वर पहले की अपेक्षा अधिक तीखा था।

"साब...तबीयत थोड़ा उचाट हो रही थी...सोचा तम्बाकू खा लूँ, चुस्ती आ जायेगी।" उत्तर देने की मजबूरी में जैसे वह गिड़गिड़ाने लगा जिसका ख़ासा असर उस व्यक्ति पर पड़ा, जो वस्तुतः उसका सुपरवाइज़र था, यानी इमिजियेट बॉस। फिर भी किशन पर उसने अपनी नज़रें ढीली नहीं कीं। जाते-जाते वह चेतावनी दे गया।

"ठीक है....ठीक है, लेकिन काम लंच से पहले ख़त्म हो जाये, वरना बड़े साहब के सामने पेशी के लिए तैयार रहना।"

सुपरवाइज़र के चले जाने के बाद उसे लगा कि उसका मन पहले से ज़्यादा उचाट हो गया है। तम्बाकू खाने की योजना उसने रद्द कर दी। रूमाल के एक कोने में उसकी गाँठ बनाने के बाद वह पुनः उसी पुराने, गन्दे और काले हो आये लकड़ी के बक्से पर बैठ गया। रूमाल उसने डांगरी की जेब में घुसेड़ लिया। बैठे-बैठे उसने सामने वर्कशॉप में दूर तक दृष्टि दौड़ाई। लम्बा चौड़ा वर्कशॉप, धुँधलायी हुई रोशनी, जगह-जगह जाले, सुपरवाइज़रों की चीख़, मशीनों के चलने और उन पर काम करने वालों की आपसी बातचीत का शोर—वह जब भी वर्कशॉप को इस तरह देखता, उदास हो जाता। गर्मी के मौसम में ये सब उसके लिए एकदम असहनीय हो उठता है। छह महीने से अधिक हो गये उसे यहाँ काम करते हुए, फिर भी यहाँ के माहौल में वह अपने को खपा नहीं पाया। एक अजनबीयत उसे बराबर सालती है।

ड्यूटी के आठ घण्टों में उसका जी बार-बार उचटता है। कहीं दूर, किसी अदृश्य लोक की ओर भाग जाने को उसका मन व्याकुल हो उठता है। उसके जी का उचटना, उसका व्याकुलता से भर जाना, उसे कभी बीड़ी, कभी तम्बाकू की चाह से भर देता है। तम्बाकू खाना और बीड़ी पीना उसने फ़ैक्ट्री की इसी नौकरी के दौरान सीखा है।

वो जब कभी तम्बाकू मल रहा होता या बीड़ी के कश ले रहा होता कि तभी उसके कानों में कोई कड़कती हुई आवाज़ टकराती, तब वह ऊपर से नीचे तक हिल उठता, विषाद और वेदना से भर जाता। ऐसी स्थिति में उसकी तम्बाकू खाने या बीड़ी पीने की चाह कभी तो बिल्कुल समाप्त हो जाती तो कभी तीव्र हो उठती। कड़कने वाला कड़क कर चला जाता लेकिन वह....? इस पक्ष को जानते हुए भी कि इस कड़क-हड़काई के पीछे कहीं उसकी भलाई का भाव भी छिपा हुआ है, वह व्यथित हो जाता। सोच की गहरी झीलों में डूबते हुए वह गुज़रे हुए दिनों की ओर जा निकलता। स्मृतियों की धारा उसे अपने साथ बहा ले जाती, यह धारा वर्तमान के प्रति उसे विद्रोही बना देती। लेकिन ऐस्बेस्टस शीट की ऊँची आग टपकाती छत के नीचे लकड़ी के बक्से पर उपजा विद्रोह उसे यह अहसास भी करा देता कि वह विद्रोह सिर्फ सोच सकता है, कर नहीं सकता। यह एहसास उसे और ज़्यादा कटु बना देता। वह दूर दूर तक छिटक जाता। बीता हुआ कल उसे अधिक मज़बूती से अपने आलिंगन में जकड़ लेता।

आज वह जो कुछ है, जहाँ है, कल्पना पट पर उसकी धुँधली छवि भी कभी नहीं उभरी। नीचे की ओर सोचने का उसे कभी अवसर ही नहीं मिला। वह सोचता था तो केवल ऊपर की ओर। बचपन के पाँव युवावस्था की देहरी तक पहुँच गये लेकिन उसने पढ़ाई के अतिरिक्त अन्य किसी ओर ध्यान नही नहीं दिया कभी। पिता ने भी एक बार नहीं कई बार चेताया था, "बेटा किशन, तुम्हें केवल पढ़ाई के बारे में सोचना है, बस किसी और तरफ ध्यान नहीं देना कभी, मैं तो हूँ सब कुछ सोचने के लिए।"

उसे पिता की बातें जब भी याद आती हैं, उनका चेहरा उसकी दृष्टि में घूम-घूम जाता है। विशाल देश के एक कर्मठ मेहनती फैक्ट्री कारीगर का चेहरा। उसकी व्यथा उग्र हो आती। भीतर कही तेज़ बारिश होती, वह नम हो जाता।

सुकून से भरा हुआ था, उसके घर का माहौल। तब भले उसने महसूस न किया हो परन्तु आज वह कर सकता है कि जिस तरह ट्रेन लोहे की पटरियों पर दौड़ती चली जाती है, निर्बाध, निर्विघ्न, उसी तरह उसका घर-परिवार आगे की तरफ बढ़ता चला जा रहा था, पिता का व्यक्तित्व इंजन की तरह था, ताप भरा। बाधाएँ....उन्हें भले आभास हुआ हो इनका, परन्तु उसे तब कभी कोई रुकावट अनुभव नहीं हुई। लेकिन आज....आज उसे लगता है कि उसके जीवन में केवल बाधाएँ है। पहली तारीख़ को हर माह उसके हाथ में जब पगार आती है, तब वह प्रसन्न नहीं होता, मुरझा जाता है। चिन्ताओं से भर उठता है। काग़ज़ पर बार-बार वह हिसाब लिखता है, बार-बार काटता है। जब वह मन माफिक़ हिसाब नहीं बिठा पाता तो सौ रुपये अपने जेब ख़र्च के निकालकर बाकी पगार माँ के हाथ में रख देता है। यह सोचते हुए कि जैसे चाहे निपटाये।

उसे पहली पगार का दिन अच्छी तरह याद है। बसन्त पंचमी का दिन था, परन्तु घर में आषाढ़ का सा सन्नाटा था। साइकिल एक किनारे खड़ीकर जब उसने जेब से पगार का पतला सा पैकेट निकालकर माँ की हथेली पर रखा था, माँ फूट फूटकर रो पड़ी थी। वह स्वयं बेहाल हुआ जा रहा था, सारा घर रो रहा था। ख़ुशी का दिन विलाप के दिन में बदला हुआ था। माँ ने आँचल के एक कोने में पगार की गाँठ बाँध तो ली थी लेकिन उसे जैसे वह खोलना भूल गयी थी।

स्मृतियों का क्रम टूटता नहीं है, चलता जाता है। पढ़ाई में वह आरम्भ से ही तेज़ था। प्रत्येक क्लास अच्छे नम्बरों से पास करना जैसे उसकी आदत सी बन गयी थी। बीते हुए दिनों में वह कभी उदास हुआ है तो तब, जब उसने देखा कि खीर बनने पर माँ उसका कटोरा पूरा भर देती है जबकि संजय, सुनीता और विनीता के कटोरे आधे ही रह जाते। माँ का यह भेदभाव उसे बराबर अखरता था, उसने विरोध भी किया था। माँ को समझाया भी कई बार था, लेकिन माँ अपनी सी करती थी। वह कर भी क्या....अचानक खट-खट की तेज़ आवाज़ उसके सोचने की श्रंखला को तोड़फोड़ देती है। 'पावर सॉ' की यह हरकत उसे अच्छी नहीं लगी। पावर सॉ को एक गन्दी गाली उसने दी। "तेरी तो माँ का..."

पावर सॉ अभी भी शोर मचा रहा था। लोहे की बार काट देने के बाद वह अब बेस को रगड़ रहा था। "अब क्या करें....." वह कोई फ़ैसला करता कि तभी कोई चीख़ा।

"अबे ब्लेड टूट जायेगा, सुइच तो ऑफ़ कर....."

उसने तुरन्त लाल बटन दबा दिया। पावर सॉ की खड़खड़ाहट बन्द हो गयी। लेकिन तभी उसे एक दूसरी आवाज़ दबोच लेती है।

"यह कहाँ खोये रहते हो, क्या कविता अविता करने लगे हो....."?

स्वर में व्यंग्य नहीं सहानुभूति है, छोटा होने के कारण अधिकतर लोग उससे हमदर्दी रखते हैं। उसकी परिस्थिति के कारण भी। वह कुछ संकोच से नज़रें उठाता है। सामने फैक्ट्री की खाकी वर्दी में वर्मा जी को खड़े देखता है। उनके एक हाथ में ग्रीस से मैला हुआ जूट है तथा दूसरे हाथ में स्पैनर, फैक्ट्री के दक्ष खरादियों में उनकी गणना होती है। वह उन्हें अंकल कहता है। सिर्फ़ अंकल। उसका संकोच बढ़ जाता है।

"बेटा ध्यान से काम किया करो।" कहते हुए वर्मा जी आगे चले जाते हैं। उसकी दृष्टि वर्मा जी का पीछा करते हुए वर्कशॉप में दूर तक घूम आती है। लेथ मशीनों की चार कतारें एकदम किनारे हैं, फिर मिलिंग मशीनें हैं, उसके बाद ग्राइंडिंग की मशीनें, फिटर्स की फिटिंग्स बेंचों के बाद लोहा काटने वाली उसकी पावर सॉ है एकदम कोने में। वह दूर तक लोहे की छीलन, कूलेण्ट के बहाव और जूट के साफ गन्दे टुकड़ों को बिखरा देखता है। मशीनों पर झुके हुए लोग उसे भारी बोझ से दबे हुए महसूस होते हैं। सहसा उसे महसूस होता है कि जैसे वह किसी यातना शिविर में आ फँसा है। जहाँ न पीने का साफ पानी है और न क़ायदे के टायलेट।

"अरे भई किशन, खड़े खड़े क्या कर रहे हो?" झुँझलाहट और आवेश में लिपटे शब्द उसे चौंकाते नहीं, बेचैन करते हैं, उसकी तन्द्रा भंग हो जाती है। वह झट पावर सॉ पर झुक जाता है। कटा हुआ टुकड़ा वह अलग रखता है। आइरन राड पर फैले हुए समान अन्तर वाले चिन्हों को सरसरी दृष्टि से नापने के उपरान्त वह अपने से कहता है।

"स्साली....पूरी रॉड लंच से पहले ही काट देनी है।" अचानक उसमें फुर्ती आ जाती है। तुरन्त वह राड का अगला निशान ब्लेड के नीचे रखता है। फिर मशीन से चिपका हरा बटन आन कर देता है। मशीन खचच....खच्च....के साथ रॉड पर रगड़ खाने लगती है।

"लंच होने में अभी डेढ़ घण्टा बाकी है।" कोई किसी से कहता है। किशन अपने आप समय जान जाता है। समय जान लेने के बाद वह पावर सॉ की गतिविधियों पर दृष्टि जमाने की कोशिश करता है। लेकिन दृष्टि ज़्यादा देर तक वहाँ टिकी नहीं रह पाती क्योंकि अतीत एक बार फिर उसे घेरने में लग जाता है। किसी कमज़ोर शय की तरह वह उसके घेरे में आ जाता है। पावर सॉ के किनारे वर्षों से पड़े चीकट हो आये बक्से पर होकर भी वह वहाँ नही रहता।

"पिता ने, माँ ने उसे लेकर कैसे कैसे सपने बुन रखे थे। कालोनी वाले भी कहा करते थे, "किशन बड़ा होकर जरूर बड़ा आदमी बनेगा।" उसने खुद भी अपने को लेकर कितने सतरंगी वृत्त बनाये थे, जिनकी परिधि बार-बार टूटती थी। कार, बंगला, नौकर, इन सबको वह अपने लिए निश्चित मानकर चल रहा था। हाँ, पिता ने स्वप्न अवश्य देखे परन्तु भविष्य की ऐसी छवियाँ कभी नहीं दिखायीं। उसके नाम के साथ उन्होंने डाक्टर या इंजीनियर शब्द कभी नहीं जोड़ा। यह आशा उन्होंने मन में कहीं अवश्य संजो रखी थी कि किशन बड़ा होकर सुनीता और विनीता के हाथ पीले करने में उनकी ज़रूर मदद करेगा। संजय को एक दुकान खुलवाने के सिलसिले में भी उन्होंने ऐसी ही आशा कर रखी थी। लेकिन आज.... तीन उदास चेहरे उसकी आँखों में धँसते चले जाते हैं। पिता का चेहरा इनके पीछे उनके साथ माँ, ग्रहण लगे चाँद जैसा उसका मुख।

ड्यूटी के मामले में पिता कितने मुस्तैद थे। देर शायद ही उन्हें कभी हुई हो। साइरन की तीखी आवाज से बँधी फ़ैक्ट्री मज़दूरों की जिन्दगी यों भी समय की मुस्तैदी की आदी हो जाती है। कार्ड पंचिंग में कुछ मिनटों की देरी का मतलब पगार में कटौती फिर भी पिता की बात ही अलग थी। छुट्टी के बदले पैसा वह लगभग प्रत्येक वर्ष लेते थे। उसने कई लोगों से सुना था कि उनकी गिनती ईमानदार और

(पेज 23 पर जारी)

गाज़ा : दो कविताएँ

ख़ालिद जुमा

ओ गाज़ा के शरारती बच्चो

ओ गाज़ा के शरारती बच्चो
तुम वही हो न जो मेरी खिड़की के नीचे
शोरगुल से मेरी नाक में दम किये रहते थे
तुम वही हो न जो दौड़भाग और कोलाहल से
हर सुबह को सराबोर कर देते थे
तुम वही हो न जिन्होंने
मेरी बालकनी का गुलदान तोड़ा था
और उसका अकेला फूल चुरा लिया था
वापस आ जाओ –
और जितनी मर्ज़ी शोर मचाओ
और सारे गुलदान तोड़ डालो
सारे फूल चुरा लो,
वापस आओ,
बस वापस आ जाओ...

जहाँ ब्सीसो

गाज़ा वापस स्कूल जाता है

स्कूल अब हज़ारों लोगों के लिए
घर और पनाहगाह है।
विद्यार्थी विस्थापित हैं या मर चुके हैं,
जख़्मी हैं या
अनाथ हो चुके हैं।
अध्यापिका बच्चों को छिपाने के लिए
लेट जाती है उन पर।
किताबें धुएँ और राख में तब्दील हो चुकी हैं।
गणित यह है
51 दिन, 2,200 मृत, 10,000 ज़ख़्मी
ज़मीन का विभाजन, अवैध बस्तियों में
कई का गुणा।
भूगोल यह है कि हम अपना नक़्शा
खुद बनाते हैं,
नदी से समुद्र तक
आप एक खुले कारागार में
न्याय का पाठ कैसे पढ़ा सकते हैं?
हाज़िरी :
गाज़ा, ख़ान यूनुस, जबालिया, बेत हानून -
अब भी खड़े हैं।
बेत लाहिया, डेर अल-बलाह, बनी सुहैला -
हम ज़िन्दा हैं।
हाइफ़ा, याफ़ा, हेब्रोन, बेतलहेम, नबलूस, रमल्ला -
हाज़िर हैं।
अल कुद्स - अब भी यहाँ है।
कविता है : इसमें कोई कविता नहीं।
क़ब्ज़े के अधीन कोई गीत नहीं होता,
होते हैं केवल मलबे के नीचे छोटे जूते।
बेत अल-अलामी, बेत अल-बत्श,
दार अबू अली
- हाज़िर हैं
मेरी सारी बहनें मर चुकी हैं।
इस नुकसान को कैसे भुलाया जा सकता है?
बेत शाबन, बेत अल्हज्ज, बेत नज्जार
- मृत या अनुपस्थित।
मरियम - सिर में गोली लगी
मेहदी - अब भी अस्पताल में
हम यासीन को नहीं खोज सके,
हम यासीन को नहीं खोज सके,
हम यासीन को नहीं खोज सके।
51 दिनों तक।
आप एक खुले कारागार में न्याय का पाठ
कैसे पढ़ा सकते हैं?
शब्द आग उगल रहे हैं। कक्षा भरी हुई है।

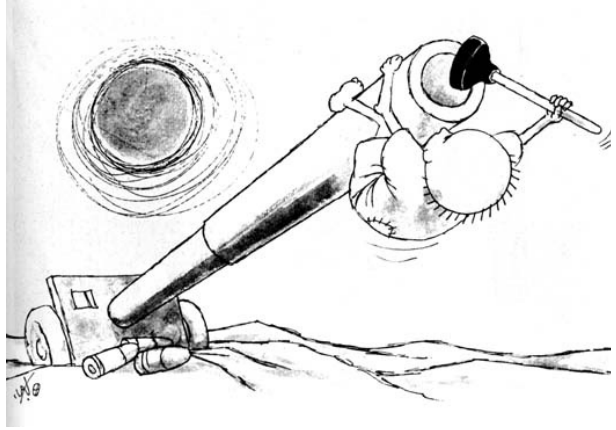

देह भंग स्वप्न भंग

(पेज 23 से आगे)

मेहनती वर्कर्स में होती है। कालोनी के अंकल, आण्टी या उनके बच्चों से जब कभी वह पे-रिवीज़न, बोनस या महँगाई भत्ते में बढ़ोत्तरी की बातें सुनता तो गदगद हो जाता। चुपके से माँ और बहनों को बताता। सबके चेहरों पर पूरे चाँद की आभा उतर आती। उसे अपना रास्ता अधिक आसान प्रतीत होने लगता।

तभी पावर सॉ की "खट खट..." उसे बताती है कि उसकी वास्तविकता केवल इतनी है कि वह पिता की फ़ैक्ट्री की एक ब्रांच में एक साधारण सी नौकरी कर रहा है। वह खीझ से भर जाता है। उसे पिता के शब्द याद आते हैं।

"बेटा किशन, रास्ता उतना सीधा नहीं है, जितना तुम सोच रहे हो। उन्होंने उसे सुझाव दिया था, इण्टर करने के बाद किसी पॉलीटेक्निक से डिप्लोमा कर लो, मेरी फैक्ट्री में अच्छी नौकरी लग जायेगी।"

उसने पिता के सुझाव को ठुकराते हुए कहा था वह डाक्टर बनेगा या इन्जीनियर।

पिता उसे देखते रह गये थे। उन्होंने समझाया था. आगे चलकर फैक्ट्री में पे-स्केल्स बढ़ जायेंगे। फिर प्रमोशन पाकर इंजीनियर तो बन ही जाओगे। फिर भी वह पिता से सहमत नहीं हो पाया था।

"नहीं बापू, मैं तुम्हारी फैक्ट्री में काम नहीं करूँगा, किसी फैक्ट्री में काम नहीं करूँगा। मुझे चिढ़ है उस घुटन और शोर भरे वातावरण से। मैं साइरन का गुलाम नहीं बन सकता।"

उसकी सोच की तरह था उसका धारा प्रवाह बोलना, जिसे साइरन की तेज़ सीटी छिन्न भिन्न करती है। वह एकदम से हड़बड़ा सा जाता है और इस हड़बड़ाहट में सहसा लाल बटन दबा देता है।

"खच्च.....फिर खटखट....की आवाज़ होती है, ब्लेड दो टुकड़ों में बँट जाता है। पावर सॉ के टूटे हुए ब्लेड को वह देखता है तो उसे अपनी ग़लती का अहसास होता है। फ्रेम को बिना स्टैण्ड पर टिकाये स्विच ऑफ़ कर देने की ग़लती का एहसास। ग़लती के प्रति उसके भीतर लापरवाही का एक भाव तिर आता है। वह बहुत धीमे कदमों से हाथ धोने जाता है। बग़ल की दीवार पर नेशनल सेफ़्टी कौंसिल के चेतावनी पोस्टर पर लगी कील में टँगे लंच बाक्स को वह उठाता है और बाहर लॉन की तरफ जाने का इरादा करता है। कैण्टीन में शोर बहुत होगा सोचकर वह वहाँ जाने से बचता है। लान में किसी पेड़ तले अकेले बैठकर खाना उसे अच्छा लगता है। वह ऐसा ही करता है। ऐसे में स्मृतियों का काम आसान हो जाता है। वह पुनः उसे आ घेरती हैं।

उस दिन हाईस्कूल का रिज़ल्ट आने वाला था। बापू ड्यूटी जाते हुए चेता गये थे। "देखो किशन, रिज़ल्ट आने पर मुझे फ़ोन ज़रूर कर देना, मैं जल्दी चला आऊँगा।"

तुम चले गए थे बापू—हमें क्या पता था कि यह तुम्हारा जाना कभी न लौटकर आने में बदल जायेगा। वह दिन किशन की आँखों में भर आता है। फर्स्ट डिवीज़न पास होने की ख़ुशी से लबरेज़ जब वह घर लौटा था तो पाया था, सन्नाटा, उदासी और चीखों का अम्बार। बापू का फैक्ट्री में काम करते हुए एक्सीडेण्ट हो गया था। वह भागता हुआ अस्पताल गया था, वहाँ पायी थी उसने बापू की क्षत-विक्षप्त लाश। फ़ैक्ट्री का ब्यालर फट गया था। खौलते पानी और लोहे के टुकड़ों का एक साथ आक्रमण हुआ था उन पर।

सोचते सोचते वह भावुक हो उठता है। भावनाओं के आवेग में वह अपना सिर दोनों हाथों से पकड़ लेता है।

"बोलो बापू—तुम्हें और तुम्हारे परिवार को क्या मिला। तुम्हारी मेहनत, लगन, निष्ठा और बलिदान का क्या पुरस्कार आया हमारे हाथ।

चन्द हज़ार रूपये और मुझे तुम्हारी फैक्ट्री में दूसरी ब्रांच में लोहा काटने की नौकरी।

साइरन की चिर परिचित आवाज़ एक बार फिर उसकी सोच में हस्तक्षेप करती है। लंच ब्रेक ख़त्म हो गया था। सर को पकड़े हाथों को वह मुँह पर फेरता है। उसकी उँगलियाँ गीली हो आती हैं। किसी बीमार की तरह ज़मीन पर हाथ टेककर वह उठता है। बहुत धीमे-धीमे भारी क़दमों से वह वर्कशॉप में दाखिल होते हुए अपनी मशीन की तरफ़ चला जाता है।

('परिकल्पना प्रकाशन' से शीघ्र प्रकाश्य कहानी संकलन 'कारख़ानों में ज़िन्दगी' से साभार)

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

मोदी सरकार के दस साल और राज्यसत्ता का फ़ासीवादीकरण

● प्रियम्वदा

मोदी सरकार के दस साल के कार्यकाल में राज्य के तमाम अंग-उपांगों का जिस तौर पर चरित्र बदला है वह बिल्कुल साफ़-साफ़ देखा जा सकता है। नौकरशाही, पुलिस, सेना, मीडिया से लेकर न्याय व्यवस्था का फ़ासीवादीकरण बीते दस सालों में बख़ूबी किया गया है।

इक्कीसवीं सदी के फ़ासीवाद ने जहाँ एक तरफ़ अपने जर्मनी और इतालवी पितामहों से काफ़ी कुछ सीखा है वहीं दूसरी तरफ़ उन्होंने इतिहास से सबक लेते हुए समाज में जड़ें जमाने के लिए अपनी कार्यपद्धति में कई बदलाव किये हैं।

इसी बदलाव को न समझ पाने के कारण हमारे देश में कई ऐसे संगठन, ग्रुप्स और बुद्धिजीवी हैं जो यह भ्रम पाल के बैठे है कि अभी फ़ासीवाद नहीं आया है। उन्हें लगता है फ़ासीवाद तभी आ सकता है जब संसदीय व्यवस्था ख़त्म होगी, विरोधी दलों का पूर्ण सफ़ाया होगा और चुनाव प्रणाली से लेकर न्याय व्यवस्था पूरी तरह ख़त्म हो जायेगी इत्यादि! मगर ये लोग 21वीं सदी के फ़ासीवाद की विशिष्टता को समझ पाने में असफल हैं। आज भारत में मौजूदा फ़ासीवादी ताकतों को बुर्जुआ जनवाद के रूप को बनाये रखने में अधिक फ़ायदा है। ऐसा क्यों हैं इसके कारणों पर हम आगे बात करेंगे। अभी हम कई उदाहरणों से इस बात को पुष्ट करेंगे कि फ़ासीवादियों ने एक लम्बे समय में और ख़ासकर बीते 10 सालों में कैसे राज्यसत्ता के सभी उपकरणों का अन्दर से 'टेकओवर' करने का काम किया है।

मोदी सरकार के राज में संसदीय जनवादी प्रक्रिया जिस तरह से बाधित हुई है वह किसी से छुपी हुई नहीं है। विपक्ष के सांसदों को बहस के लिए न बोलने देना हो या पूरे सत्र के लिए दर्जनों सांसदों का निलम्बन करना हो, यह सब 'संसदीय' तौर-तरीक़ों के ज़रिये किया जा रहा है। इस सरकार ने पिछले दस सालों में कई क़ानून संसद में पारित किये बिना ही अध्यादेश के ज़रिए लागू कराये हैं।

आज राज्य मशीनरी के हर महत्वपूर्ण पद पर संघ या भाजपा से जुड़े लोग या उनके प्रतिबद्ध लोग विराजमान हैं। चुनाव आयोग हो, सुप्रीम कोर्ट हो, दूरदर्शन, यूजीसी, एनसीईआरटी, मानवाधिकार आयोग, नीति आयोग, आरबीआई, महिला आयोग, फिल्म सर्टिफिकेशन बोर्ड हो या विश्वविद्यालयों में वीसी से लेकर कॉलेज प्रधानाचार्य का पद हो, संघ ने हर स्तर पर फ़ासीवादी विचारधारा को फैलाने वाले लोगों को नियुक्त किया है। जिन राज्यों में ये सत्ता में मौजूद नहीं है वहाँ भी राज्य सरकारों के कामों में अपने द्वारा नियुक्त किये गये राज्यपालों के ज़रिये पूरी तरह हस्तक्षेप कर रहे हैं।

जिन जगहों पर "डबल इंजन" के रूप में ये हैं, जैसे यूपी मॉडल, असम मॉडल, गुजरात मॉडल, वहाँ पूरी राज्य मशीनरी को मुस्लिम आबादी के ख़िलाफ़ प्रचार के लिए प्रयोग में ला रहे है। मुस्लिम बहुल बस्तियों पर अवैध निर्माण के नाम पर बुलडोज़र चढ़ाना, अवैध शादियों की जाँच के नाम पर मुस्लिमों को जेल में डालना, मदरसों को निशाना बनाना, यह सब काम भाजपा सरकार राजकीय तंत्र और क़ानूनी व्यवस्था के ज़रिये ही कर रही है।

नौकरशाही की बात करें तो इससे कोई आँखें नहीं चुरा सकता कि मौजूदा नौकरशाही भी फ़ासीवादी एजेण्डे को खुलेआम लागू कर रही है! अभी हाल ही में योगी सरकार ने उत्तर प्रदेश के सभी सरकारी विभागों को यह आदेश दिया कि अयोद्धा में होने वाले राम मन्दिर के उद्घाटन से पहले अपने-अपने कार्यालयों में रामभजन और रामायण पाठ जैसे कार्यक्रम आयोजित करें। वहीं हलाल सर्टिफिकेशन जाँच के नाम पर पुलिस और एसटीएफ़ का इस्तेमाल कर मुस्लिम आबादी को निशाना बनाया जा रहा है।

पुलिस, सेना से लेकर सीबीआई, ईडी, रॉ जैसी संस्थाएँ आज नंगे तौर पर फ़ासीवादियों के हाथों की कठपुतली बनी हुई हैं। बीते साल प्रमुख अमेरिकी अख़बार 'वॉशिंगटन पोस्ट' की एक रिपोर्ट ने यह खुलासा किया कि रॉ के एक उच्च अधिकारी कर्नल दिव्य सतपथी डिसिनफो लैब नामक एक फ़र्ज़ी रिसर्च कम्पनी बनाकर विदेश में रह रहे मोदी सरकार के विरोधियों को अपना निशाना बना रहे थे। रॉ द्वारा संचालित इस कंपनी का कार्यभार था मोदी-शाह हुकूमत के आलोचकों को और ऐसे समूहों को भारत के ख़िलाफ़ एक वैश्विक साज़िश के रूप मे पेश करना और उन्हें फ़र्ज़ी मुक़दमों में जेल भेजने का अधार बनाना।

जहाँ एक तरफ़ रॉ, ईडी, सीबीआई जैसी संस्थाएँ 2014 के बाद से विपक्षी चुनावी दलों के नेताओं के पीछे लगे रहने में काफी सक्रिय रही हैं वहीं दूसरी तरफ़ भाजपा के नेता-मंत्रियों के सारे दाग धोने का भी काम इनके ज़रिये किया गया है। मज़ेदार बात यह है कि यही विपक्षी नेता अगर भाजपा में शामिल हो जायें तो इनकी जाँच करना ये एजेंसियाँ बन्द कर देती हैं। उदाहरण के तौर पर असम के मुख्यमंत्री हेमंत बिस्व शर्मा के मामले को ले लीजिए। जब तक वह कांग्रेस में थे, शारदा चिट फण्ड घोटाले को लेकर जाँच एजेंसियाँ अपना काम बख़ूबी कर रहीं थी मगर उनके भाजपा की गोद में आकर बैठने के साथ ही पूरी जाँच को साँप सूँघ गया। वहीं टीएमसी के नेता सुवेन्दु अधिकारी नारद स्टिंग ऑपरेशन मामले में ईडी और सीबीआई के जाँच के केन्द्र में थे मगर जबसे वह भाजपा में शामिल हुए हैं उनके ऊपर चल रही सभी जाँच-पड़ताल थम गयी। ऐसा ही महाराष्ट्र के वर्तमान उपमुख्यमंत्री अजित पवार का मामला है जिन्हें ख़ुद नरेन्द्र मोदी ने महाभ्रष्ट बताया था लेकिन पार्टी तोड़कर शिवसेना-भाजपा सरकार में शामिल होते ही उनके सारे आरोप धुल गये!

मोदी-शाह राज में न्याय व्यवस्था के चेहरे से न्याय की पट्टी का आख़िरी धागा भी निकल गया है। यह अनायास ही नहीं था जब पूरे इतिहास को झुठलाते हुए मस्जिद की जगह पर राम मन्दिर बनाने का फैसला सुप्रीम कोर्ट की रंजन गोगोई की अध्यक्षता वाली बेंच ने दिया जिसके बाद गोगोई जी राज्य सभा के सदस्य बना दिये गये! यह कैसे भूला जा सकता है कि 2019 के चुनाव से ठीक पहले कोर्ट ने राफ़ेल विमान ख़रीद घोटाले में मोदी सरकार को क्लीन चिट दे दी और इस घोटाले की जाँच की माँग तक को ख़ारिज कर दिया। गुजरात के बलात्कारी दंगाइयों को बरी करने से लेकर धारा 370 हटाने की बात हो, जज लोया की संदिग्ध मौत का मुकदमा हो या फिर अडानी को क्लीन चिट देने का फैसला, सुप्रीम कोर्ट मोदी सरकार और संघ परिवार की ज़ुबान ही बोलती हुई दिखी है। गुजरात उच्च न्यायालय के फ़ैसलों में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह कई बार यह अन्तर ही मिटा देता है कि फ़ैसला कोर्ट दे रहा है या भाजपा सरकार का कोई मंत्रालय! बनारस और मथुरा में मस्जिद के अन्दर मन्दिर के अवशेष ढूँढने की इजाज़त कचहरी ही देती रही है। अब तो प्रशान्त भूषण से लेकर दुष्यंत दवे जैसे वरिष्ठ वकीलों ने ये सवाल उठाने शुरू कर दिये हैं कि सुप्रीम कोर्ट में राजनीतिक महत्व के मुकदमे मोदी के मुख्यमंत्री काल में क़ानून सचिव रही बेला त्रिवेदी को ही क्यूँ मिल रहे हैं?

क्या यह अनायास ही है कि सत्ता पक्ष यानी भाजपा व संघ परिवार से जुड़े हत्यारों, दंगाइयों, बलात्कारियों, भ्रष्टाचारियों को कोई सज़ा नहीं मिलती है? अमित शाह, आदित्यनाथ से लेकर बृजभूषण शरण सिंह, प्रज्ञा सिंह ठाकुर, अनुराग ठाकुर, कपिल मिश्रा, संगीत सोम, असीमानन्द "बाइज़्ज़त बरी" कर दिये जाते हैं और इनके ख़िलाफ़ दर्ज हत्याओं, दंगों, धार्मिक उन्माद फ़ैलाने, नफ़रती भड़काऊ भाषणों के तमाम मामले रातोंरात ग़ायब हो जाते हैं। वहीं दूसरी तरफ़ जनपक्षधर पत्रकार, कलाकार, एक्टिविस्ट, इंसाफपसन्द शिक्षक, बुद्धिजीवी, साहित्यकार, सीएए-एनआरसी का विरोध करने वाले छात्र-युवा बिना किसी सबूत के सालों-साल जेलों में क़ैद रखे जाते हैं। फ़ासीवादियों के प्रति न्यायपालिका की इस "निष्पक्षता" के हज़ारों उदाहरण हमें मिल जायेंगे। **मोदी राज में न्याय व्यवस्था सिर्फ़ पूँजीपतियों और फ़ासिस्टों के दाग धोने और उन्हें अपराध-मुक्त करने में लगी है।** न्यायपालिका से लेकर नौकरशाही, पुलिस, सेना तक हर जगह ही शीर्ष पदों पर पहुँचने वाले अफ़सरान सरकार की जी-हज़ूरी करने वाले लोग हैं, भाजपा, आरएसएस, विश्व हिन्दू परिषद के काडर हैं या उनसे सम्बन्ध रखते हैं।

शिक्षण संस्थानों को देखें तो आज वहाँ नियुक्तियों से लेकर पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम भी सीधे तौर पर संघ के एजेण्डे के तहत तय हो रहे हैं। देशस्तर पर शिक्षा के साम्प्रदायिकीकरण का अभियान और छात्रों के बीच अतार्किकता, अवैज्ञानिकता और अनैतिहासिकता फैलाने की इनकी योजना लम्बे समय से चल रही थी। सरस्वती शिशु मन्दिर से शुरू होते हुए आज तमाम प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में भी इन्होंने अपनी घुसपैठ कर ली है। ऐसे कोर्स और विभाग को बीते कुछ सालों में लाया गया है जो संघ की विचारधारा को छात्रों के बीच बिठाने के प्रयास में लगे हुये हैं। कई केन्द्रीय विश्वविद्यालयों तक में ज्योतिष, वास्तु, कर्मकाण्ड आदि विभाग खोले गये हैं जिसके ज़रिये अन्धविश्वास को नये सिरे से ज़ेहन में बिठाने की मुहिम चल रही है। हास्यास्पद बात यह है कि छात्रों-युवाओं को यह भी बताया जा रहा है कि इससे रोज़गार के नये अवसर मिलेंगे! पाठ्यक्रम में बदलाव के नाम पर जहाँ एक तरफ़ इतिहास के पाठ्यपुस्तकों से मुगलों के इतिहास को हटाया जा रहा है, लोकतंत्र पर अध्याय और डार्विन के सिद्धान्त को ग़ैर-ज़रूरी बताया जा रहा है वहीं दूसरी ओर छात्रों को भारतीय ज्ञान, परम्पराएँ और रीति-रिवाज के ज़रिए 'भारतीय ज्ञान प्रणाली' हासिल करवायी जा रही है। शिक्षा व्यवस्था के साथ-साथ पूरी मीडिया के जरिये फ़ासिस्ट आज मिथकों को समाज में कॉमन सेंस के तौर पर बिठाने का काम कर रहे हैं और वैज्ञानिक और ऐतिहासिक नज़रिए (जिससे इन्हें सबसे अधिक डर लगता है) को कुन्द करने के लिए नये-नये प्रपंच रच रहे हैं!

उपरोक्त उदाहरण यह सिद्ध करने के लिए काफ़ी हैं कि भारत में राज्य उपकरणों का किस क़दर फ़ासीवादीकरण हुआ है। नौकरशाही, सेना, पुलिस, सशस्त्र बलों, न्यायपालिका और यहाँ तक कि मीडिया में दशकों में फैली आणविक व्याप्ति (molecular permeation) की एक लम्बी प्रक्रिया के ज़रिये इन्होंने अपनी अवस्थिति को सुदृढ़ किया है और इन तमाम उपकरणों का अन्दर से इस हद तक 'टेकओवर' किया है जिस हद तक इन्हें अपने एजेण्डे को लागू करने में रत्तीभर भी समस्या न पैदा हो!

इक्कीसवीं सदी के फ़ासीवाद की एक ख़ासियत यह है कि वह हिटलर व मुसोलिनी के समान आपवादिक क़ानून लाकर संसद व चुनावों को भंग नहीं करता, वह संविधान और न्याय का खोल बनाये रखना चाहता है लेकिन औपचारिक तौर पर संसद, चुनावों, न्यायालय आदि को बनाये रखते हुए भी सत्ता में होने पर इनकी अन्तर्वस्तु को धीरे-धीरे समाप्त कर देता है। जिसका नतीजा यह होता है कि सिर्फ़ पूँजीवादी जनवाद का खोल बचता है और अन्तर्वस्तु विसर्जित हो जाती है। (हमने मज़दूर बिगुल के अक्टूबर-2023 अंक के सम्पादकीय में इस बात पर विस्तारपूर्वक लिखा है।)

फ़ासीवादी शक्तियाँ बुर्जुआ जनवाद के इस खोल को बरकरार रखकर आज वे सारे काम कर सकती हैं जो बुर्जुआ वर्ग के हितों के सामूहिकीकरण के लिए अनिवार्य हैं। भारत के फ़ासीवादी संघ और भाजपा भी जर्मनी और इटली के इतिहास से सीखते हुए आज इसी को अंजाम दे रहे हैं। फ़ासीवादी संघ ने आज़ादी के बाद से ही राज्य तथा समाज के पोर-पोर में पैठ बनायी है। वहीं बुर्जुआ वर्ग ने भी यह समझदारी दिखायी है कि बुर्जुआ जनवाद के

(पेज 17 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गाँधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006